प्रतिभाशाली लेखक की युगान्तरकारिणी कृति

इन्कलाब जिन्दाबाद

लेखक

श्री सत्यनारायण शर्मा

प्रकाशक—निहालचन्द वर्म्मा।

हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय

१६५।१ हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथम संस्करण } सं० १६३६ { मूल्य २)

मानवताके दोनों हाथ जंजीरोंमें जकड़े हुए हैं! वह उसे तोड़नेकी आप्राण चेष्टा कर रही है। पृथ्वीके ऊपर साम्राज्यवाद ओर पूंजीवादकी सघन श्याम घन-मालाएं छायी हुई है! उसमें 'क्रान्ति' की बिजली चमक उठी है!

इस पुस्तकमें

विद्रोही कवि

'अज़ल' के कर-कमलोंमें

प्राक्कथन

सूर्यके चारों ओर परिक्रमा देनेवाले इस छोटेसे ग्रहके सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानवके जीवनमें जितना हाहारव—जितनी अशान्ति—जितना कारुणिक क्रन्दन बिखरा पड़ा है, यदि उसे किसी अन्य ग्रहका अधिवासी आकर देखे, तो सचमुच वह आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहेगा। मानवके जीवनमें जितना सुख है, उससे सहस्र-गुणित दुःख, क्लेश है। चिन्ताएं मुंह बाये हुए उसके सामने खड़ी रहती हैं। सुख इस पृथ्वीपर सरसोंके समान है किन्तु शोक सुमेरु पर्वत सा। तभी तो, प्राणोंके एक-एक मधुर स्पन्दनको शब्दोंका परिधान पहना कर विश्वके समक्ष रखनेवाला विद्रोही कवि गाता है—

यह जीवन तो एक पाप है, अभिशापों की छाया।
जहां वासना सी फैली है, लोलुप उर की माया।

कई दार्शनिकोंने—गम्भीर विचारशील मनीषियोंने तो यहांतक कह दिया है कि यह पार्थिव अस्तित्व एक विपुल व्यर्थता और कटुतासे आच्छन्न है, इसीलिये आत्मघात ही श्रेयस्कर है—अपने-आपको मिटा देना ही मानवका चरम कर्त्तव्य है। एक नहीं, कोटि-कोटि मानवोंका कहना है—आह, जीवनकी अपेक्षा मृत्यु कितनी सुखकर है! किन्तु सबसे अधिक अच्छा तो यह हुआ होता कि हम इस नरक लोकमें उत्पन्न ही न हुए होते।

सचमुच, मानव-जीवनकी यह साम्प्रतिक दुर्दशा एक ऐसा विषय है, जिसके कारणोंपर एवं जिसके निराकरणके उपायोंपर

विचार करना परमावश्यक है। एक नहीं, अनेक मनीषियोंने इसकी गम्भीर विवेचना की है और अपने क्रान्तिकारी विचारोंके द्वारा विश्वके विचार-क्षेत्रमें एक उथल पुथल मचा दी है।

प्रश्न होता है, जब इतनी इतनी किताबें इस विषयकी विद्यमान है, तब मैने यह किताब क्यों लिखी? इसका संक्षिप्त उत्तर मैं यही देना चाहता हूं कि यदि अमाके घोर तिमिस्रमें,आकाश-पथमें बिखरे हुए अनेकानेक तारकोंमें एक और तारक आ जाता है तो पथिक-दलको उससे अधिक लाभ भले ही न हो, गगनका सौंदर्य्य किसी न किसी अंशमें विवृद्ध होता ही है। पथिकोंको आलोक तो प्रभात-कालीन मार्त्तण्डसे ही प्राप्त हो सकता है। मैं भी सोत्सुक दृगोंसे उस मार्त्तण्डकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

और हां, यह पुस्तक राजनीतिक किम्वा अर्थनीतिक दृष्टिकोण से नहीं लिखी गयी है। मैने मानव-जातिके विभिन्न पहलुओंपर विचार किया; मेरे मनमें जो भावनाएं जागृत हुंई, उन्हें ही मैने अभिव्यक्त कर दिया है।

एक बात और। इस किताबमें प्रूफकी गलतियां बहुत रह गयी है। "निरीक्षण" को 'नीरीक्षण' 'सृष्टि' को 'सृस्टि' और 'तपस्वी' को 'पपस्वी' छाप दिया गया है; लेकिन इसमें मेरा दोष नहीं।

बस, भूमिका इतनी ही। पाठक आगे बढ़ें।

कलकत्ता प्रवास
१५-१-३६

सत्यनारायण शर्म्मा।

वर्तमान अशान्तिका उपचार—

महाक्रान्ति !

सामाजिक व्यवस्थाके अव-
गुण ही क्रान्तिके उद्भावक
हैं—लेनिन

क्रान्तिके द्वारा ही मानव-
जातिकी वर्तमान दुरवस्थाको
दूर किया जा सकता है ।

—क्रोपाटकिन ।

दिनका समस्त कोलाहल अपनेको रात्रिकी नीरवतामें विलुप्त कर देनेको उद्यत हो रहा है। प्राची-पथसे प्रवेश करके मर्त्यलोकके आधे भागको आलोकित करनेवाला दिवाकर प्रतीचीके वेश्ममें उपस्थित है। वृक्षोंकी शाखाओंपर विहग-वृन्द अपनी सुमधुर भाषामें न जाने क्या-क्या बोल रहे हैं!...कुछ दूर वाटिकाके किसी वृक्षसे अत्यन्त मनोहर आवाज आ रही है—कुहू, कुहू!

'रतन टाकिज' के सामने सौ-डेढ़सौ आदमी खड़े हैं। अधिक संख्या नवयुवकों की है। सबके शरीर स्वच्छ एवं विभिन्न प्रकारके वस्त्रोंसे ढंके हुए हैं। कहीं-कहीं पाउडर और स्नोने भी कपोलोंकी श्री-वृद्धि की है। धोतियां जूतोंकी नोक तक झूल रही हैं। जिसके वस्त्र जितने ही बहुमूल्य हैं और जो 'फैशन' के जितना ही निकट पहुंचा हुआ है, वह अपनेको उतना ही महान समझ रहा है!...लेकिन सबके पास तो इतनी हिम्मत नहीं कि वे अपनी अन्य आवश्यकताओंकी अवहेलना कर 'फैशन' के देवताकी उपासना कर सकें। फलतः वे अपनेको कुछ तुच्छ समझते हुए 'रतन टाकिज' के आकर्षक भवनकी ओर ताक रहे हैं!...कुछ दूर एक पानकी दूकानके पास दो-चार ग्रामीण खड़े हैं और चकित होकर इस जन-समूहको देख रहे हैं।

एक बड़ी ही अच्छी 'कार'आती है और दो सुन्दर नवयुवतियां उतरती हैं। सबकी दृष्टि उस ओर चली जाती है। उनकी रेशमी साड़ीका ईषत्कम्पन कितनोंको ही 'घायल' कर देता है। उनकी कृष्ण अलकावलियां कितने ही नवयुवक दर्शकोंके नेत्रोंको निर्निमेष कर देती हैं। वे प्राणोंको मदिराकुल बना देनेवाली चालसे सीढ़ियों पर चढ़ती हैं और हौलके अन्दर प्रवेश करती हैं। एक नवयुवक अपने दूसरे साथीके गलेमे हाथ डालकर कहता है—'उफ् ! इतना सौंदर्य !'...दूसरा अपने शुष्क किन्तु स्नो-शृङ्गारित मुखसे सिगरेटका धूम्र छोड़ता हुआ कहता है—'काश ! यह मुझे मिल जाती !'

और कुछ दूर वाटिकाके किसी वृक्षसे अत्यन्त मनोहर आवाज आ रही है—'कुहू, कुहू !'

अब फिर एक नयी 'कार' आती है—पहलेवालीसे भी अधिक अच्छी। इससे एक नवयुवक उतरता है; बहुत ही कीमती वस्त्र पहने हुए है। सेण्टकी सुगन्धसे उपस्थित जनताका चित्त आह्लादित हो जाता है। वह सिगरेटका कश लेता हुआ पानकी दूकानके पास जाता है और एक अठन्नी फेंककर पानके बीड़े लेता है; एक पैकेट सिगरेट लेता है और बचे हुए पैसे वापस लेकर बड़ी शानके साथ उपस्थित जनताको देखता है। उसकी आंखोंमें धनैश्वर्यका गर्व मुस्करा रहा है।

फटे और मलिन वस्त्र पहने हुए एक किशोर संयोगवश उसकी राहमें आ जाता है और दोनों टकरा जाते हैं। धनैश्वर्यका अधिपति दैन्य एवं आकिञ्चन्यके अधिपतिकी ओर दीप्त नेत्रोंसे देखता है और

बोल उठता है—'रैस्कल!'...वह बेचारा 'रैस्कल' राह छोड़ देता है और अपने ओठोंपर मुस्कराहट लानेकी कोशिश करता है, जिससे उसके आस-पासके खड़े हुए आदमी यह न समझ लें कि उसे 'रैस्कल' कहकर दुःख पहुंचाया गया है।

धीरे-धीरे अंधेरा घना होता जाता है। मोटरें आती है और उनकी कतार लग जाती है। उपस्थित व्यक्तियोंमें कुछ अपने सह-चरोंके साथ बातें कर रहे हैं; कुछ सिगरेटको अपने ओठोंसे लगाये हुए अपनेको बहुत बड़ा आदमी समझ रहे हैं, और कुछ यह सोच रहे हैं कि क्या ही अच्छा हुआ होता, यदि इन मोटरोंमेंसे किसी एकके स्वामी वे भी हुए होते! जो ज्यादा समझदार हो गये हैं और दुनियांको देख चुके हैं, वे इस तरहकी बातें सोचना बहुत पहले ही छोड़ चुके हैं। लेकिन कुछ 'नादान' नये खूनवाले नवयुवकोंका हृदय कभी अमर्षसे, कभी ईर्ष्यासे अभिभूत हो उठता है।

एक किशोर अपने दूसरे सहचरसे कहता है—"मेरे पास काफी रुपये हो जायँगे, तो मैं भी एक वैसो (एक काले रंगकी बहुत ही कीमती 'कार' की ओर इशारा करके) 'कार' खरीदूंगा और तब हम दोनों सारे भारतका पर्यटन करेंगे।"

"लेकिन तबतक तुम्हारी यह जवानी नहीं रह जायगी। आई० ए०में पढ़ते हो न? बीस-बाइसकी नौकरी करोगे और स्वप्न देखते हो..."—उसका दूसरा साथी रुमालसे अपना मुंह पोंछते हुए कहता है।

थोड़ी देर तक शांति रहती है। उसके बाद एक नवयुवक ... पैरोंके चप्पलसे पास ही खड़ी हुई एक क्रिश्चियन ...

मन ही मन तुलना करनेके बाद कहता है—"यार, हमलोग बड़े बद-किस्मत हैं। अभी हमलोगोंकी जवानी है, नयी-नयी उमंगें हैं लेकिन पैसे नहीं। और अगर रात-दिन मिहनत करके भाग्यके देवताको खुश भी कर लें, तो तबतक बुढ़ापा पहुंच जायगा !...उसी लड़केको देखो न ! क्या मौजके साथ जिन्दगी बसरकर रहा है ! कंजूस बाप की कमाई पानीकी तरह बहा रहा है !...हमलोग क्या करें ? कहीं 'लौटरी-बाटरी'निकल जाय तो...लेकिन यह सब वाहियात बातें हैं। यहाँ तो सारी जिन्दगी 'नोन, तेल, लकड़ी' के ही फेरमें बीतेगी !'

उसकी बातोंको सुनकर कोई कुछ नहीं कहता है। इतनेमें ही एक नवयुवक आता है और उन लोगोंके समीप खड़ा हो जाता है। उसके चेहरे पर उदासी है। उसे देखकर एक दूसरा नवयुवक कहता हैं—'अरे, आज तुम इतने उदास क्यों हो ?'

'उदास ? उदास कहां हूं ?' वह अपने ओष्ठोंपर मुस्कराहट लाने की चेष्टा करता है।

'तो अब कहां जानेका विचार है ? पटने जाओगे या हजारीबाग ? रांचीमें तो बी० ए० है ही नहीं ?'

"न पटने जाऊंगा और न हजारीबाग; यहीं—रांचीमें ही रहूंगा और दस-बीसकी नौकरी करूंगा। घरकी हालत ऐसी नहीं है कि वे मुझे बाहर भेज सकें।" नवयुवक इस बार फिर मुस्करानेकी कोशिश करता है,लेकिन उसकी अपरिसीम निराशा,—उसके जीवन सारे कुचले हुए अरमान,—उसकी सारी घायल आकांक्षाएं उसके बना रही हैं।

"खैर, अच्छा ही है। घरका कामकाज देखो।" और जो व्यक्ति ऐसी सलाह देता है, वह स्वयं बिल्कुल निकम्मा विद्यार्थी होकर भी लक्षाधीश पिताका पुत्र होनेके कारण बहुत शीघ्र ही विदेश जानेकी तैयारी करनेवाला है।

अँधेरा घना होता जा रहा है; सूरज डूब चुका है; आकाशमें अगणित तारे मुसकरा-मुसकराकर मानव-जातिकी सामाजिक व्यवस्थाका उपहास कर रहे हैं!...और कुछ दूरसे आवाज आरही है—कुहू-कुहू!

कुछ मलिन वस्त्र पहने हुए मुसलमान लड़के सड़कके बीचमें लड़ पड़ते हैं। आपसमें गाली-गलौज करने लगते हैं। फिर मार-पीट होने लगती है। एक लड़की जा रही है। उसके हाथमें एक छड़ी है, जिसमें बेला और चमेलीकी कई मालाएं हैं। लड़कोंसे धक्का खाकर वह गिर पड़ती है। उसकी मालाएं राहकी धूलसे खराब हो जाती हैं। वह रोने लगती है। एक युवक उसके पास जाता है और पूछता है—"रोती क्यों हो, चोट तो नहीं लगी?"

"नहीं, चोट तो नहीं लगी, लेकिन घरपर मां आज मुझे मारेगी; बोलेगी कि तू मालाएं बेचकर सब पैसोंको खर्च कर आयी है।"

नवयुवक अपने अन्य साथियोंकी ओर अभिमानपूर्वक देखता है और पाकेटसे एक इकन्नी निकालकर दे देता है। लड़की डरती-डरती इकन्नी ले लेती है और घरकी ओर भाग जाती है।

"बड़े आदमियोंकी बड़ी बात होती है। देखो......"—एक मुसलमान सौदागर अपने साथीसे कहता है।

और कुछ दूर किसी सहकार-शाखापर कोयल कूक उठती है—कुहू-कुहू !

+ + + +

कौन अधिक सुखी है ? कौन अधिक निश्चिन्त है ? कौन उस चिरसुन्दर 'दिलवर' की दुनियांमें अधिक आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करता है ?......'रतन टाकीज' के सामने खड़े होकर ईर्ष्या, द्वेष, अमर्ष, निराशा और वासनासे अभिभूत होनेवाले मानव या उद्यानके वृक्षोंकी पत्रसंकुला-शाखाओंपर स्वच्छन्द 'कुहू-कुहू' गानेवाली कोयल ?

(२)

एकाएक रेकर्ड बजने लगता है—"मैं वनकी चिड़िया वनके वन-वन डोलूं रे !"

उपस्थित नवयुवक-वृन्द अपने हृदयकी भावनाओंकी इतनी सुन्दर और कोमलकान्त अभिव्यक्ति सुनकर प्रसन्नताके अतिरेकसे विह्वल हो उठते है ! सबके हृदय-देशका गायक गा उठता है—"मैं वनका पंछी वनके बन-बन डोलूं रे !"

लगता है, जैसे सन्तप्त मानव-आत्मा अपनी पारिपार्श्विक संस्थितियोंसे ऊब उठी हो और एक पंछीके जीवनको अपने जीवनसे अधिक अच्छा समझकर गा उठी हो—"मैं वनकी चिड़िया वनके वन-वन डोलूरे !"

सचमुच, साम्प्रतिक मानव-जातिके जीवनमें जितना हाहारव है—जितना निदारुण उत्पीड़न है, उसे देखते हुए तो जङ्गलके पंछीका जीवन कहीं अच्छा है ! प्रभातकी किरणोंको वातायन-पथसे आते

हुए देखकर जब मानव-मस्तिष्क दिनके चिन्ता-भारसे उद्विग्न हो जाता है,तब वनके विहग वृक्षकी शाखाओंपर जागृतिके—आनन्दके—उल्लासके गायन गाना प्रारम्भ कर देते हैं। जब एक स्थानको छोड़-कर दूसरे स्थानको जानेके लिये मानवको नाना प्रकारके प्रयास करने पड़ते हैं; रात-दिन परिश्रम करके अपना खर्च एकत्र करना पड़ता है; तब जङ्गलके पंछी बिना किसी प्रकारकी चिन्ताके व्योम-पथमें उड़कर ईप्सित स्थानको पहुंच जाते है। जब मानव अपने प्रेम-पात्रको,—अपने हृदयके अधीश्वरको सामाजिक बाधाओंके कारण प्राप्त करनेमें असमर्थ होकर सदैवके लिये निराशाके क्रोड़में मूर्च्छित हो जाता है, तब विपिन-विहारी विहग अपने इच्छानुसार भोग-विलास-निरत होता है। जीवनमें कोई अभाव नहीं रहता, कोई अतृप्ति नहीं रहती! जीवनमें राशि-राशि उल्लास और मधु-मादकता बिखरी रहती है। रात्रिका तिमिर उसे निद्राके क्रोड़में सुला-कर प्रभातकी ज्योतिर्धाराकी प्रतीक्षा करने लगता है और प्रभातकी ज्योतिर्धारा उसके प्राणोंमें अपरिसीम उल्लास भरके—उसके हृदयमें राशि-राशि आनन्द समाविष्ट करके रात्रिके तिमिरकी प्रतीक्षा करने लगती है।… …और मानव? वह अभागा अपने समाजका एक सदस्य रात-दिन चिन्ता-भारसे परिम्लान रहकर भी—कठिन परि-श्रम करके भी रोटीकी समस्या हल करनेमे अपनेको असमर्थ पाता है! अन्ततोगत्वा अपनी सामाजिक व्यवस्थासे ऊबकर वह एक पंछी बनकर वन-वन उड़नेकी कल्पना करता है और गाता है—"मैं वन का पंछी बनके वन-वन डोलूं रे!"

(३)

आखिर ऐसा क्यों है ? क्यों पृथ्वीके सर्वोत्कृष्ट प्राणीके जीवनमें इतनी निदारुण यन्त्रणाएं हैं—क्यों उसके जीवन-पथमें इतने राशि-राशि कण्टक हैं,—उसकी उन्नतिमें इतने अधिक प्रतिरोध हैं कि वह एक पक्षी बनकर कानन-कानन उड़ना चाहता है ?—एक चिड़िया बनकर वन-वन बोलनेकी कल्पना करके फूला नहीं समाता ?

मानव-जातिके अगणित कष्टों और विपत्तियोंके कारणोंपर विभिन्न दार्शनिकोंने विभिन्न रूपसे विचार किया है। किसीके सिद्धान्तोंके अनुसार मानव-जीवन दुःख-सुख, दोनोंका समन्वय है और दोनोंका अस्तित्व अनिवार्य है। कोई मानव-जीवनको अभिशाप समझता है, और इसलिये इसे अज्ञानसे सम्भूत समझकर इसकी पूर्ण अवहेलना करता हुआ, आत्म-घातको श्रेयस्कर समझता है। किसी-किसीके अनुसार मानव-जातिके सन्तापोंका कारण उसका पापाचरण है, और किसी-किसी दार्शनिकका तो यह कहना है कि विश्वमें सुख नामकी कोई चीज ही नहीं; बालक जन्म ग्रहण करते ही दुनियांसे घृणा करना सीखता है, प्रेम नहीं !

खैर, जो हो, मानवके लिये यह विश्व हो या विश्वके लिये मानव हो; सृष्टिमें मानव-जातिका कोई स्थान हो या नहीं हो; इतना तो निश्चित है कि इसके अधिकांश दुःख ऐसे हैं, जो स्वयं उसकी गलतियोंसे समुद्भूत हुए हैं। जिन नियमोंकी—जिन प्रथाओंकी सृष्टि उसने अपने सुख-सौविध्यके लिये की थी, वे ही कालान्तरमें विकृत होकर—दूषित होकर आज उसके जीवनमें अपरिसीम हाहाकार बिखेर रहे हैं, उसकी आकांक्षाओंको कुचल रहे हैं, उसके अरमानों

का खून कर रहे हैं। और अभागा मानव,—दुर्बल मानव भीति-सन्त्रस्त होकर उनकी ओर देख रहा है, लेकिन उसमें इतना साहस नहीं, इतना शौर्य नहीं कि वह उन प्रथाओंको विनष्ट कर दे और समयानुकूल अभिनव प्रथाकी सृष्टि करे!

मानव-जातिका आविर्भाव किस प्रकार हुआ, इस प्रश्नके नाना विध उत्तर मनीषी वैज्ञानिकोंके द्वारा दिये जा रहे हैं, किन्तु यह तो अविसंवादित सत्य है कि समाजका आविर्भाव मानव-जातिकी सुख-सुविधाके लिये ही हुआ था। जीवनके कण्टकाकीर्ण मार्गपर एकाकी चलनेमें जब मनुष्यने अपनेको असमर्थ पाया और सहचरोंकी आवश्यकता महसूस करने लगा, तब धीरे-धीरे समूहोंकी—छोटे-छोटे समाजोंकी स्थापना होने लगी। एकाकी रहकर जो मानव अपनी उदर-पूर्ति करनेमें भी अपनेको अक्षम पाता था, वही अपने अन्य सहचरोंकी सहायतासे नाना प्रकारके सुख-सौविध्यकी उपलब्धि करता हुआ ज्ञानके देवताकी उपासनामें दत्तचित्त हुआ।

परिवर्तन सृष्टिका अपरिवर्तनशील नियम है। जहां गति है, वहां परिवर्त्तन अवश्य होगा। पृथ्वी निरन्तर गतिशील है, इसलिये इसपर सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। लेकिन जो शक्तिशाली होते हैं,--जिनके प्राणोंमें यौवनका उत्साह होता है, वे परिवर्तनको अपने अनुकूल बना लेते हैं। लेकिन जो निर्बल होते है, वे पिस जाते हैं,—विनष्ट हो जाते हैं।

धीरे-धीरे मानव-जातिकी संख्यामें भी वृद्धि होती गई, और परिवर्तनोंमें भी। उदर-पूर्तिके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी चेष्टाओंमें

मानव निरत होने लगा। फलतः कार्योंका विभाजन हुआ। मुद्रा-प्रथाका आविष्कार हुआ। न्यायकारो नृपतिका निर्वाचन हुआ। और भी न जाने कितनी बातें हुईं, लेकिन सभीका उद्देश्य यही था कि मानव-जाति सुखपूर्वक रहे,—ज्ञानालोकमें निरन्तर उन्नति-पथ-पर अग्रसर होती रहे।

लेकिन ऐसा हुआ नहीं। जिस मुद्राप्रथाका प्रचलन मानव-समाजके कतिपय विचारकोंने सुख-सुविधाके लिये किया था, वही अन्तमें समाजके लिये घातक सिद्ध हुई। समाजके अधिक हिस्सेको दैन्य एवं आकिञ्चन्य प्रदान करके स्वयं प्रासाद-निवासी होनेवाले पूंजी-पतियोंका जन्म हुआ। जिन नृपतियोंका निर्वाचन मनीषियोंने जातिके हितके लिये किया था, उन्हींके उत्तराधिकारी उन्नति-पथके प्रतिरोधक हुए। विद्वानोंको, दार्शनिकोंको, साहित्यिकोंको, कला-कारोंको रोटीके लिये दर-दर भटकना पड़ा और मूर्ख एवं काहिल पूंजीपतियोंके प्रासादोंमें संसारका सारा एश्वर्य आ उपस्थित हुआ! संसारके जिन-जिन भागोंमें मुद्रा-प्रथाकी एवं शासन-प्रथाकी नींव डाली गई थी, वहां सर्वत्र उद्देश्य-विपर्यय संघटित हुआ।

जिस समय मानव-जाति ज्ञानके आरम्भिक क्षीणालोकमें उन्नति पथपर चलना सीख रही थी और जिस समय आजकी भांति विशाल नगरोंका अस्तित्व नहीं था, उस समय मानवके सामने जो समस्या थी, वह अवतक हल नहीं हो सकी। शताब्दियां बीत गयीं, अनेकानेक प्रकारकी वैज्ञानिक उन्नति हुई लेकिन रोटीका सवाल ज्यों का त्यों है। पहले मनुष्य परिश्रम करके—जङ्गलोंके बन्धुर पथमें

दौड़ धूप करके उदर-पूर्ति करनेमें सफल हो जाया करता था, लेकिन अब तो जबतक वह पूंजीपतियोंका कृपाकांक्षी नहीं होता, तबतक लाख मेहनत करने पर भी उसे बुभुक्षित ही रहना पड़ता है, और अगर इस अन्यायका,—इस विचित्र समाजिक व्यवस्थाका वह विरोध भी करता है तो पूंजीपतियोंकी रक्षाके लिये स्थापित की गयी सरकार उसके समस्त प्रयासोंको विफल कर देती है।

जबतक रोटीकी समस्या हल नहीं होती है, तबतक समाजकी उन्नति भी असम्भव है। बुभुक्षित रहकर कोई भी न तो साहित्यकी उन्नतिके लिये ही कागजपर कलम दौड़ा सकता है, और न वैज्ञानिक आविष्कार ही कर सकता है। नतीजा यह होता है कि साहित्यिकोंको पूंजीपतियोंका गुलाम बनकर साहित्यका सृजन करना पड़ता है, वैज्ञानिकोंको धनाधीशोंके लिये अपना बहुमूल्य समय नष्ट करना पड़ता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें योग्यताकी पूछ नहीं है। चित्रकारको अपनी उदर-पूर्तिके लिये ड्राइवरी करनी पड़ती है, दार्शनिकको 'क्लर्की' करनी पड़ती है और कहानीकारको कपड़ा बेचना पड़ता है! फिर भी लोग आश्चर्य करते है,—समाजमें इतनी अशान्ति क्यों है! इतना हाहाकार क्यों श्रुतिगोचर होता है!

मैं यह नहीं कहता कि पूंजीपतियोंकी सत्ताका मूलोच्छेद करके 'प्रत्येक व्यक्तिसे उसकी योग्यताके अनुसार और प्रत्येक व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार' के सिद्धान्तका प्रचलन हो जानेसे मानव-जातिके सारे दुःख दूर हो जायंगे। समस्त दुःख तो कभी दूर हो ही नहीं सकते। हो सकता है, इस दुनियांमें कुछ ऐसे भी

लोक हों—'प्लेनेट' हों, जहांके निवासियोंके जीवनमें दु,ख नामकी कोई चीज न हो, लेकिन पृथ्वीपर रहने वालोंके लिये तो दुःख और सुख, दोनों ही अनिवार्य हैं। भगवान श्री कृष्णके शब्दोंमें भी... 'दुःखालयमशाश्वतम्। अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्यं भजस्वमाम्' और इसीलिये केवल सुखाकांक्षी होकर रहनेको अपेक्षा 'मैं नहीं चाहता चिर सुख, मै नहीं चाहता चिर दुःख' वाली फिलासफीका अनुगमन कहीं श्रेयस्कर है!...फिर भी इतना तो निश्चित है कि यदि हम बद्धपरिकर हो जायँ तो मानव-जातिके बहुतसे कष्टोंको दूर कर सकते हैं—उसे बहुत अधिक उन्नत बना सकते हैं!

रोटीकी समस्याके हल न होनेका कारण यह नहीं है कि आवश्यकतानुकूल उत्पत्ति नहीं की जा सकती। उत्पत्ति तो इतनी होती है कि अमेरिकामें मनों गेहूं समुद्रमें प्रवाहित कर दिया जाता है, मनों दूध नदियोंमें बहा दिया जाता है। प्रोफेसर बर्नोका कहना है कि यदि वितरणपर नियन्त्रण रखा जाय और उत्पत्तिके साधनोंपर समुचित ध्यान दिया जाय तो अमेरिकाके प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आय १५००० रुपयेकी हो सकती है। प्रिन्स क्रोपाटकिनने 'रोटीका सवाल' नाम्नी पुस्तकामें यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ही अधिक लोगोंके बुभुक्षित रहनेका कारण है! और जब तक इसमें सुधार नहीं हो जाता है—जबतक पूंजीवादका नाश नहीं हो जाता है—जब तक वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें महान् परिवर्त्तन नहीं हो जाता है, तबतक यह सवाल भी हल होनेसे रहा।

संसारमें इस समय दो शक्तियां हैं—एक साम्राज्यवादकी, और दूसरी समाजवाद की। साम्राज्यवाद कतिपय गिने चुने आदमियोंके सुखकी ओर ध्यान देता है, और समाजवाद सारे समाजके हितोंकी ओर। शेष समस्त 'वाद' इन्हीं दोके अन्तर्गत आ जाते हैं। इस समय दुनियांमें इटली, जर्मनी और जापानकी—यानी साम्राज्यवादियोंकी उन्नति देखकर कतिपय लोग घबड़ाये हुए हैं, लेकिन यह भयभीत होनेकी बात नहीं है! यह बुझते हुए दीपककी आखिरी दीप्ति है! दुनियांके मनीषीगण यह अच्छी तरह जान गये हैं कि साम्राज्यवाद रोटीकी समस्या हल नहीं कर सकता।

यों तो एक दिन मानव-जातिको विनष्ट होना ही है—सदाके लिये महानाशके क्रोड़में सुप्त होना ही है, लेकिन यदि उसने अपनी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें सुधार नहीं किया, तो यह निश्चित है कि उसका नाश समयसे कुछ पहले ही हो जायगा!...वर्तमान अशान्ति—क्षण प्रतिक्षण होनेवाले भावी महायुद्धकी आशङ्का असार नहीं है, मिथ्या नहीं है। भावी महायुद्ध संसारके समस्त मनीषियोंको चेतावनी दे रहा है—"मैं उस प्रलय-रात्रिका सन्देश-वाहक हूं, जो एक दिन मानव-जातिको सदैवके लिये विनाशके अन्धकारमें विलुप्त कर देगी! यदि मेरे बाद भी तुम लोग नहीं चेते, तो सर्वनाश निश्चित है।"

(४)

फिर यह समस्या कैसे हल हो?

क्रान्ति?

हां, आज महाक्रान्तिकी आवश्यकता है! पृथ्वीपर निवास करनेवाले सर्वोत्कृष्ट प्राणीकी सामाजिक व्यवस्थामें महान् परिवर्तन करनेकी ओवश्यकता है। जिस सामाजिक व्यवस्थामें योग्यताकी पूछ न हो,—प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको उदर पूर्त्तिके लिये दर-दर भटकना पड़ता हो, सारी सुविधाएं कतिपय पूंजीपतियोंके लिये ही हो, उसका विनाश-साधन करनेकी आवश्यकता है। वनके पक्षियोंके जीवनसे भी जिस समाजके सदस्योंका जीवन हीन हो, बदतर हो— अधिक परतन्त्र हो, उसमें आमूल परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है; अन्यथा वह महान् शक्ति, जो विश्वका संचालन कर रही है, मानव जातिको नष्ट कर देगी। अनेकानेक दार्शनिक, अनेकानेक कवि, अनेकानेक वैज्ञानिक यदि इसी भांति प्रतिकूल परिस्थियोंका सामना करते रहे तो वह दिन दूर नहीं, जब बुद्धिवादके प्रशस्त मार्गके अनुयायी ये महाव्रती अपनी लेखनीसे विष विकीर्ण करना आरम्भ कर देगे,—अपने घातक आविष्कारोंसे प्रलय मचा देंगे!!

समाजवाद से ही
रोटीका सवाल हल होगा

युगोंके संस्कारसे मलिन बुद्धिवाले मनुष्य इस बातको मानें या न मानें, लेकिन यह सर्वथा सत्य है कि जब तक पूँजीवादका विनाश नहीं हो जाता, जब तक साम्राज्यवादकी वैभव-समाधिपर विनाशका ताण्डव नहीं होता, तब तक रोटीका सवाल हल नहीं हो सकता।

मैं अपने कमरेमें बैठा हुआ सामनेके विटपी-दलोंपर सुमधुर शोर करनेवाले विहगोंका चाञ्चल्य देख-देखकर विमुग्ध हो रहा था। संध्याके आगमनसे अरुणिम हो जानेवाली वारिद-मालायें विटपी-दलोंकी उच्चतम शाखाओंका आलिङ्गन करती सी प्रतीत हो रही थीं।

एकाएक मेरे कमरेके दरवाजेके पास दो कुत्ते आ पहुंचे—आपसमें लड़ते हुए। एक शिशु अपनी परोपकारिणी मातकी प्रेरणासे एकाकी ही उनके सामने रोटी डालनेका प्रयास कर रहा था।

मेरा ध्यान शाखाओंपर स्वच्छन्द आनन्द-मग्न होकर फुदकने वाले विहंगमोंसे हटकर इन भोजनार्थी कुत्तोंकी ओर आकर्षित हो गया। शिशु उन्हें रोटीके टुकड़े दे रहा था और वे एक दूसरे पर झपट रहे थे। उनका युद्ध-रव सुनकर मुहल्लेके दो-चार और कुत्ते आ पहुंचे और उस भोजन-प्राप्तिके युद्धमें सम्मिलित हो गये। एक कुत्ता तो उछलकर उस शिशुके समीप भी पहुंच गया। दुर्बल शिशु उस कुत्तेके अप्रत्याशित आगमनसे भयभीत होकर रोने लगा।

उसकी क्रन्दन-ध्वनि सुनकर उसकी मां दौड़ी आई और रोटी उसके हाथोंसे छीनकर रास्तेमें डाल गयी।

चारों-पांचो कुत्ते आपसमें लड़ने-झगड़ने लगे। सूखी और धूलमें सनी रोटियां उनकी युद्ध-लिप्साका केन्द्र हो रही थी।

क्या मानव-जातिके अधिकांश सदस्योंकी दशा उन कुत्तोंसे भी अधिक हीन नहीं है? उन कुत्तोंमें से एकने तो अपने दाताको केवल अपनी उपस्थितिसे भयभीत ही किया था; पर क्या अधिकांश मानव अपने दाताको दुर्बल पाकर उसका सत्यानाश करनेको उद्यत नहीं हो जाते? क्या रोटीके टुकड़ोंके लिये आपसमें लड़ाइयां करते हुए मानव-समूह लज्जित होते हैं? क्या सबल मानव दुर्बल मानवका गला रोटीके एक टुकड़ेके लिये नहीं घोंट देता?

रोटी—रोटी!

मानव-जाति अपनी वर्तमान उन्नत मानसिक स्थितिपर अभिमान भले ही कर ले; लेकिन जहां तक उदर-पूर्तिका प्रश्न है, उसके अधिकांश सदस्य सड़कपर रोटीके टुकड़ोंके लिये झगड़ने वाले कुत्तोंसे कुछ कम नहीं। रोटीके लिये वे जघन्यातिजघन्य कार्य करनेमें भी संकुचित नहीं होते। रोटीका एक क्षुद्र टुकड़ा उनकी सारी धार्मिक एवं आध्यात्मिक शक्तियोंपर पानी फेर देता है! 'मा कुरु धन-जन-यौवन-गर्वं हरति निमेषात्काल सर्वं। मायामय—मिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपद त्वं प्रविश विदित्वा' का जप करनेवाले भक्तगण रोटीका एक टुकड़ा प्राप्त होता हुआ देखकर अपने प्रतिद्वन्दी का अपकार करनेमें लज्जित नहीं होते। रात-दिन स्नेह-प्रदर्शन करनेवाले मित्र भी रोटीका प्रश्न उपस्थित होते ही स्नेहहीन बन जाते हैं।

आखिर, इसका कारण क्या है ? वर्षों तक विज्ञानका आलोक मानव-सभ्यताके पथपर फैलते रहनेपर भी यह बुद्धिसम्पन्न प्राणी क्यों अभी तक रोटीका सवाल हल करनेमें असफल रहा है ? जिस जातिके सदस्योंने वायुयानोंका आविष्कार किया, चित्रपटोंको सवाक् बनाया, नाना प्रकारके यन्त्रों द्वारा सभ्यताके पथको प्रशस्त किया, उसी जातिमें आज उदर-पूर्तिके प्रश्नको लेकर इतनी अशान्ति —इतना हाहारव क्यों है।

मनीषियोंने नाना प्रकारसे इस प्रश्नपर विचार किया और नाना प्रकारके निष्कर्ष निकाले हैं। रोटीके टुकड़ोंकी प्राप्तिके लिये कुत्तोंकी भांति युद्ध करनेकी जो प्रवृत्ति है, उसके निराकरणके लिये अनेकानेक साधनोंका आविष्कार किया है। लेकिन वे समस्त साधन अन्धकारपूर्ण गगनमें प्रकाश विकीर्ण करनेवाले तारकोंकी भांति हैं। तारकोंसे विप्रयोगीको रैन काटनेका एक सुगम साधन भले ही उपलब्ध हो जाय, लेकिन अन्धकार उनसे दूर नहीं हो सकता। उसको दूर करनेके लिये—जागृति एवं आलोककी धारा प्रवाहित कर देनेके लिये सूर्यकी आवश्यकता होती है। मानव-जाति के वर्तमान अन्धकारको दूर करके चतुर्दिक हर्षोल्लास प्रसृत करनेमें 'समाजवाद' का मार्तण्ड ही समर्थ हो सकता है। समाजवादकी स्थापनासे कुत्तोंकी भांति भोजनार्थ युद्ध करनेकी प्रवृत्तिका ही नहीं, बल्कि इसके साथ-साथ मानव-जातिके अन्य अनेकानेक दुर्गुणोंका भी नाश हो जायगा। फलस्वरूप विश्वके राजनीतिक गगनमण्डलमें आर्थिक क्रान्तिकी सफलता प्रत्यक्ष दिखाई देगी।

बात यह है कि मानव-जातिकी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था इतनी दूषित है—मिथ्या विश्वासोंसे ऐसी जकड़ी हुई है कि उसे देखकर कोई भी विचारशील व्यक्ति मानव-जातिको दुर्भाग्य-ग्रस्त कहे बिना नहीं रह सकता। समाजकी स्थापनाका एकमात्र उद्देश्य व्यक्तिकी उन्नति है, क्योंकि व्यक्ति ही तो समाजका निर्माण करता है। जिसमें व्यक्तिकी उपेक्षा हो—अवहेलना हो, वह समाज सर्वथा अर्थहीन है। हां, परिस्थिति-विपर्ययसे ऐसा हो सकता है कि समाज के कतिपय अल्पसंख्यक व्यक्तियोंको अधिकांश व्यक्तियोंकी सुख-सुविधाके लिये कुछ कालतक उपेक्षित एवं दुखी जीवन व्यतीत करना पड़े, किन्तु जिस समाजमें क्षुद्रातिक्षुद्र संख्यावाले व्यक्तियोंको छोड़कर,शेष सभीका जीवन कष्टों एवं निदारुण यन्त्रणाओंमें व्यतीत हो,उसकी जितनी भी भर्त्सना की जाय, थोड़ी है—वह जितना शीघ्र विनाशके तिमिर में विलुप्त हो जाय, उतना ही अच्छा। आरम्भिक वनेचरोंने सामूहिक रूपमें रहना इसीलिये स्वीकार किया था कि ऐसा करनेसे उनको उन सब विघ्न विपत्तियोंका सामना नहीं करना पड़ेगा, जो एकाकी जीवन-यापन करनेवालोंके सम्मुख उपस्थित होती हैं। यदि वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाका करुणापूर्ण चित्र उन आरम्भिक मानवोंको प्राप्त हो जाता, यदि वर्तमान रोटीका भयंकर प्रश्न और निपीड़ितोंकी करुणा-गाथा उन्हें ज्ञात हो जाती, यदि समाजकी विकसित अवस्थाके वर्तमान रोदन-क्रन्दनका आभास उन्हें मिल जाता, तो वे शायद ही सामूहिक जीवनको अङ्गीकार करते! सामूहिक जीवनका एकमात्र उद्देश्य समूहमें रहनेवालोंकी सुख-सुविधाकी

सुरक्षा है। जिस सामूहिक जीवनमें कतिपय क्षुद्रसंख्यक व्यक्तियोंको छोड़कर, शेष सभीका नित्य नवीन कष्टोंको वरण करना पड़े, वह किस कामका? बुद्धि-सम्पन्न मानव ही नहीं, पृथ्वीके अन्य पशु-पक्षी भी सुख-सुविधाके लिये ही सामूहिक जीवनको अङ्गीकार करते हैं। प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपनी 'पारस्परिक साहाय्य' नामक पुस्तिकामें इसे भलीभांति स्पष्ट कर दिया है। जब हम मानव-जातिकी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको इस दृष्टिसे देखते हैं, तो यह सर्वथा हेय एवं अर्थहीन दीख पड़ती है।

मानवके समक्ष सर्वप्रथम जो प्रश्न उपस्थित होता है, वह है अस्तित्वका। अन्य बातें उसके बाद आती हैं; अस्तित्वके लिये जिन चीजोंकी आवश्यकता है, उनमें वायु, जल, प्रकाश, भोजन इत्यादि प्रमुख हैं। इनके अभावमें जीवित रहना असम्भव है। वायु, जल, प्रकाश इत्यादिके लिये मानवी परिश्रम आवश्यक नहीं, लेकिन भोजन तो परिश्रमके बिना उपलब्ध हो ही नहीं सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीपर दो-एक ऐसे स्थान भी हैं, जहांके वनवासियोंको भोजनके लिये अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। प्रकृतिका भोजन-प्राचुर्य उन्हें सदैव प्रफुल्लित रखता है। किन्तु सर्वत्र ऐसा सम्भव नहीं। श्रमके बिना भोजनकी उपलब्धि असम्भव है; और जबतक भोजनकी उपलब्धि नहीं हो जाती, तबतक किसी प्रकारकी भी उन्नति एक विडम्बनामात्र है। विज्ञानकी आलोक-रश्मियोंसे शृङ्गारित होकर भी मानव-जाति अभी तक रोटीका सवाल नहीं हल कर पायी है, इसी कारण आज इतना विपर्यय पृथ्वीके कोने-

कोनेमें दृष्टिगोचर होता है। साहित्य, सङ्गीत, कला, विज्ञान इत्यादि का स्थान भोजनके उपरान्त आता है। बुभुक्षित व्यक्ति न तो अभिनयके द्वारा ही प्रसन्न हो सकता है, और न अच्छी-अच्छी चित्रावलियों या पुस्तकोंके ही द्वारा। बर्नर्डशाके शब्दोंमें,—"धर्मग्रन्थ—प्रदान बालकके लिये हितकर हो सकता है, लेकिन यदि वह बालक बुभुक्षित हो, तो उसे रोटीका एक टुकड़ा और थोड़ासा दूध न देकर धर्मग्रन्थ प्रदान करना सर्वथा पागलपन है। स्त्रीकी बुद्धि उसके शरीरसे अधिक आश्चर्यजनक होती है, किन्तु यदि उसके शरीरको भोजन न मिले तो उसकी बुद्धि चौपट ो जायगी। शरीरको उचित आहार मिलनेसे उसकी बुद्धि अपनी ऽा स्वयं कर लेगी। भोजनका स्थान मानवी आवश्यकताओंमें सर्वप्रथम है।" यदि आज दुनियाके रहनेवाले भोजनकी समस्या हल कर ले, यदि आज पृथ्वीके प्रत्येक भागमें बुभुक्षितोंको भोजनकी सुविधा प्राप्त हो जाय और किसी भी व्यक्तिको भविष्यके लिये भोजनकी चिन्ता न करनी पड़े, तो यह निश्चित है कि साहित्य, दर्शन और विज्ञानकी उन्नति दिन-दूनी रात-चौगुनी होने लगेगी। साहित्य, दर्शन और विज्ञान, ये तीनों सभ्यताके आधार स्तम्भ हैं। इनकी उन्नतिसे ही सभ्यताकी उन्नति होती है। इनकी साम्प्रतिक दुरवस्थाका कारण अनेकानेक प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको भोजनका न मिलना ही है।

जिस प्रकार एक परिवारके प्रमुख व्यक्तिका सर्वप्रथम कर्त्तव्य परिवारको भोजन एवं वस्त्र प्रदान करना है, उसी प्रकार राष्ट्रके

प्रमुख व्यक्तियोंका सर्वप्रथम कर्तव्य भी समस्त देशवासियोंको अन्न और वस्त्र प्रदान करना ही है। यदि कोई गृहस्वामी अपने परिवारके व्यक्तियोंमेंसे कुछको तो दूध और मलाई खिलावे, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहननेको दे, और कुछको अर्ध-बुभुक्षित रखे, तो यह निश्चित है कि ऐसे परिवारमें शान्ति नहीं रह सकती। राष्ट्र भी एक बड़ा परिवार है। यदि इस वृहत् परिवारके प्रमुख व्यक्ति सभीकी प्रमुख आवश्यकता पूर्ण नहीं कर सकते, तो शान्ति असम्भव है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें प्रत्येक व्यक्तिको भोजन और वस्त्र मिलना असम्भव है। इसका कारण यह नहीं है कि उतनी उत्पत्ति नहीं होने पाती, वैज्ञानिक आविष्कारोंने मानवकी उत्पादन-शक्तिको अत्यधिक बढ़ा दिया है। अधिकांश व्यक्तियोंके अर्ध—बुभुक्षित रहनेका कारण है - पूंजीवाद। जबतक सामाजिक व्यवस्थाका वर्तमान स्वरूप नष्ट नहीं हो जाता, तबतक मानव-जातिकी प्राथमिक आवश्यकता—भोजन और वस्त्रकी प्राथमिक आवश्यकताकी पूर्ति भी असम्भव है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पूंजीवादपर टिकी हुई है और पूंजीवाद मानवी सभ्यताका एक महान अभिशाप है! इसको दूर करनेके लिये ऐसे लक्ष-लक्ष तरुण तपस्वियोंकी आवश्यकता है, जो गृह-परिवारके सङ्कीर्ण ममता-मोहको त्याग करके अपने कण्टकाकीर्ण मार्गपर चल सकें।

मानव-जातिके समक्ष जो इस समय रोटीका प्रश्न भयङ्कर रूपमें उपस्थित है और लक्ष-लक्ष नर—नारियोंको अर्ध-बुभुक्षित रहना पड़ता है इसका कारण वर्तमान विभाजन-प्रणाली है, न कि

उत्पत्तिकी कमी, जैसा कि कतिपय भ्रान्त विचारोंवाले विचारक कहा करते हैं। लाखों कृषक अहर्निश परिश्रम करके अन्नका उत्पादन करते हैं। लेकिन वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें उस अन्नका विभाजन जिस प्रकार होता है, वह सर्वथा निन्दनीय है। कुछ व्यक्ति तो आवश्यकतासे अधिक पा जाते हैं, और कुछ व्यक्तियोंकी उदरपूर्त्ति भी नहीं होती। वर्तमान साम्राज्यवादी सरकार भी उन्हींका पक्ष-समर्थन करती है, जो दुःख-दारिद्र्यसे निपीड़ित श्रमिकोंके द्वारा उपार्जित वस्तुओंका सर्वाधिक उपभोग कर पाते हैं, क्योंकि ऐसा न करनेसे उसका अस्तित्व सुरक्षित नहीं रह सकता। वास्तविक कारणको न समझकर, या समझकर भी न समझनेकी कोशिश करके, वर्तमान साम्राज्यवादी सरकार रोटीका सवाल हल करनेकी कोशिश करती है। बुभुक्षित एवं निपीड़ित जनता भी उसमें अपना हित देखकर उसका साथ देती है, किन्तु समझदार लोग इन प्रयासोंकी व्यर्थतापर करुणा-पूर्ण दृष्टि निक्षेप करते हुए मानव-जातिकी दुर्दशापर आंसू बहाते हैं।

युगोंके संस्कारसे मलिन बुद्धिवाले मनुष्य इस बातको मानें या न मानें, लेकिन यह सर्वथा सत्य है कि जबतक पूंजीवादका विनाश नहीं हो जाता, जबतक साम्राज्यवादकी वैभव-समाधिपर विनाशका ताण्डव नहीं होता; तबतक रोटीका सवाल हल नहीं हो सकता! समाजवाद ही मानव-जातिकी वर्तमान दीन-हीन अवस्थाको मिटा सकता है। समाजवादी व्यवस्था स्थापित हुए बिना समाजके प्रत्येक सदस्यको न तो यथेष्ट भोजन ही मिल सकता है,और न वह अपनी

विशिष्ट शक्तियोंका यथेष्ट विकास ही कर सकता है। धनका वितरण जब उचित रूपसे होने लगेगा, तब आजकी भांति सड़कों-पर भीख मांगते हुए अल्पवयस्क बालक नहीं दृष्टिगोचर होंगे।

लेकिन पूंजीवादका विनाश आखिर हो कैसे?......इसका एकमात्र उपाय है, वर्तमान व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन। जबतक ऐसा नहीं हो जाता, जबतक पृथ्वीके पूंजीपतियोंकी सत्ताका मूलो-च्छेद नहीं हो जाता, तबतक पृथ्वीपर इसी प्रकार योग्य व्यक्ति अयोग्य व्यक्तियोंके दास बनकर मानवताका उपहास कराते रहेंगे—बुभुक्षितों एवं वस्त्रहीन मानवोंका हाहाकार होता रहेगा! यह आमूल परिवर्तन ही सभ्यता एवं संस्कृतिको पश्चातपद करनेवाले धनपतियों के अभिमानको चूर चूर कर सकेगा। अनुनय-विनयसे,—मान-वता और धर्मके नामपर पूंजीपति सहज ही अपने अनुचित अधि-कारोंको नहीं त्याग सकते! और जबतक वे अपने वर्तमान अनुचित स्वत्वोंको नहीं छोड़ते, तबतक श्रमिकोंके जीवनमें सुख और आशाका समावेश भी असम्भव है। पूंजीपतियोंके हिमायती,—मानव-समाजको दुःख-दुर्दशाके मौलिक कारणोंको समझनेमें अस-मर्थ हो जानेवाले व्यक्ति अक्सर श्रमिकों और पूंजीपतियोंके पारस्परिक सौहार्दकी स्थापना पर जोर दिया करते हैं। वे श्रमि-कोंकी उदर-पूर्तिके लिये पूंजीपतियोंकी आवश्यकता समझते हैं। परन्तु यहां वे आपको धोखा देनेकी चेष्टा करते हैं। उनकी इस विचित्र एवं मूर्खतापूर्ण नासमझीका उत्तर अधिकारी विद्वानोंके द्वारा कई बार दिया जा चुका है।

अब हमारे सामने यह प्रश्न नहीं रह जाता कि रोटीका सवाल किस प्रकार हल हो ? प्रश्न तो अब यह है कि हम किस प्रकार उस सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापना करें, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुसार कार्य करे और आवश्यकताके अनुसार पारिश्रमिक प्राप्त करे। यही एकमात्र उपाय है, जिसके द्वारा रोटीकी समस्या हल हो सकती है, शेष समस्त साधन क्षणिक हैं, मिथ्या हैं, प्रलोभन-स्वरूप हैं ।.... .किन्तु केवल स्वप्न देखनेसे ही काम नहीं चलनेका। हमें इसके लिए बद्धपरिकर होना पड़ेगा। समस्त सङ्कीर्ण ममताओंका परित्याग करके हमें निर्भीक होकर आत्म-बलिदान करना पड़ेगा। क्षणिक वासनाओं और घृणित कामनाओंकी हत्या करके हमें मानव-सभ्यताके बन्धुर पथके घोर तिमिरको दूर करनेके लिए मार्तण्डका आह्वान करना पड़ेगा। संसारके समस्त प्रपञ्च-प्रवीण शिखण्डी हमारी गतियोंको प्रतिहत करनेका प्रयास करेंगे, किन्तु हमने जो कदम आगे बढ़ाया है,—वह किसीके रोके नहीं रुकेगा—नहीं रुकेगा।

क्या समाजवाद से अकर्मण्यताका प्रसार होगा ?

न जाने कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्ति वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके कारण अकालमे ही काल कलवित हो गये, न जाने कितने रवीन्द्र बाबू और जगदीशचन्द्र बोस आज भारतवर्षमें हुए होते, यदि विज्ञान और साहित्यसे प्रेम रखने वालोंको अपनी अभिरुचिके प्रतिकूल काम नहीं करना पडता।

मानव-जातिकी जननी यह पृथ्वी है। इसीके विभिन्न तत्वों के मिश्रणसे यह अस्थि-मांस-निर्मित सज्ञान प्राणी उत्पन्न हुआ है और इसीमें विलुप्त भी हो जायगा। पृथ्वी गतिशील है। यह सूर्यके चारों ओर अण्डाकार पथमें चलती रहती है। जबसे यह सूर्यसे विलग हुई है, तबसे लेकर अबतक—कई करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी—यह परिक्रमा देती जा रही है और अभी कई लाख वर्षों तक कदाचित् विश्राम नहीं ही ग्रहण करेगी। मानव-जाति ही नहीं, पृथ्वीपर अन्य जितने भी प्राणी हैं, सबमें यह गतिशीलता दीख पड़ती है। वृक्ष आरम्भमें छोटा रहता है; फिर बड़ा होता है, अपनी शाखाओंका विस्तार करता है, पल्लवों एवं पुष्पोंसे श्रृङ्गारित होकर काननकी शोभा बढ़ाता है और अन्तमें विनाशके क्रोड़में मूर्छित हो जाता है—मृत्युके तिमिरमें खो जाता है। पशु-पक्षी, सभी इसी प्रकार घटते बढ़ते रहते हैं। सदैव एक-सा स्वरूप किसीका नहीं रहता। जो आज शिशु है, वह कल किशोर हो जाता है, और जो आज किशोरावस्थाके चञ्चल अञ्चलको पकड़कर जीवन-पथ-पर जा रहा है, वही कल यौवनकी वज्र-कठोर उंगलियां पकड़े हुए जीवनके बन्धुर पथपर क्रान्तिके गीत गाने लगता है। जो आज कवि है, कल वही वैज्ञानिक अनुसन्धानोंमें लग जाता है। जो आज

आस्तिक है, कल वही नास्तिक होकर मन्दिरों और मस्जिदोंके विरुद्ध प्रचार करने लगता है। सर्वत्र परिवर्त्तन होता रहता है, और इस परिवर्तनका सहचर हैं असन्तोष। पृथ्वीपर जो जितना ही अधिक जीवन-शक्तिसे अनुप्राणित है, वह अपने काममें उतना ही अधिक असन्तोष पाता है। इस असन्तोषका, इस निरन्तर चलने वाले परिवर्तनका एक मात्र कारण है—पृथ्वीकी गतिशीलता। जब-तक पृथ्वी इसी प्रकार सूर्यके चारों ओर परिक्रमा देती रहेगी, तब-तक इसपर रहनेवाले प्राणियोंमें कर्मण्यता भी रहेगी, और जब यह स्थिर हो जायगी, तबका तो कुछ कहना ही नहीं है! क्योंकि तब मानव-जाति नामकी कोई चीज इस विश्वमें नहीं रह जायगी।

मानव अकर्मण्य होकर जीवित नहीं रह सकता। कर्म कर-नेका उसका स्वभाव है। प्रकृति उसे कुछ-न-कुछ करते रहनेको अनुप्रेरित करती है, या यों कहिये कि सभी कर्म प्रकृति द्वारा किये जाते हैं,—गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है।

"प्रकृतेः क्रियामाणानि गुण कर्माणि सर्वशः।

अहङ्कार विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥"

सारे गुण-कर्म प्रकृतिके ही द्वारा सम्पादित होते है। मानव तो मिथ्या अहङ्कारके वशीभूत होकर अपनेको कर्त्ता समझने लगता है; और प्रकृति कभी शान्त नहीं रह सकती। गतिशीलता उसका धर्म है। पृथ्वीके समस्त प्राणियोंका उद्भव इसी गतिशीलतासे हुआ है, और गतिशीलता ही कर्मण्यता है। दूसरे शब्दोंमें गतिशील प्राणी ही कर्मण्य है।

फिर भी दुनियांमें ऐसे बहुतसे भ्रान्त बुद्धिवाले मनुष्य हैं, जिनके कथनानुसार मनुष्यकी कर्मण्यताका कारण उसकी प्रकृति नहीं बल्कि उसकी आवश्यकताएं हैं। उनका कहना यह है कि मानव जो कुछ करता है, किसी-न-किसी आवश्यकतासे करता है—किसी-न-किसी अभावको दूर करनेके लिये ही उसके समस्त कर्मोद्यम होते हैं। और इसी भ्रान्त सिद्धान्तको लेकर वे उस उत्कृष्ट सामाजिक व्यवस्थापर भी आक्षेप करते हैं, जिसकी स्थापना हो जानेसे प्रत्येक मनुष्यका दुःख-दारिद्र्य दूर हो जायगा,—बुभुक्षित एवं वस्त्रहीन मानव कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होंगे,—पारस्परिक विद्वेष-संघर्ष का अन्त हो जायगा, लोभ और ईर्ष्याके लिये कोई भी स्थान नहीं रहेगा। इन भ्रान्त व्यक्तियोंकी यह धारणा है कि समाजवादकी स्थापनासे मानव-जातिकी वर्तमान कर्मण्यता नष्ट हो जायगी और कतिपय व्यक्तियोंको छोड़कर सब आलस्य एवं अकर्मण्यतासे अभिभूत हो जायंगे।

लेकिन जिन्होंने मानव-जातिके इतिहासका अध्ययन किया है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस पृथ्वीपर जितने भी महान् कार्य हुए हैं, वे धनोपार्जनके उद्देश्यसे नहीं हुए हैं। अपने लिये और अपने बच्चोंके लिये ऊंचे-ऊंचे प्रासादोंका निर्माण करानेके लिये—समाजमें लक्षाधीशके नामसे सम्बोधित एवं आदृत किये जानेके लिये वैज्ञानिकोंने इतने-इतने आविष्कार नहीं किये। दार्शनिकोंने अपनी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये इतने-इतने विशाल ग्रन्थोंके लेखनमें अपने स्वास्थ्यकी बलि नहीं चढ़ाई। कवि-

योंने अन्न और वस्त्रके लिये काव्योंकी रचना नहीं की। इन सब महान कृत्योंके पीछे एक ऐसी शक्ति काम करती है, जो समस्त तुच्छ आवश्यकताओंसे कहीं महान् है। एक सन्देश सा आता है,—बादलोंके कृष्ण पटलको चीरकर, विद्युतकी भांति एक आदेश आता है और प्रतिभाशाली व्यक्तिका अन्तस्तल उस आदेशका अनुवर्तन करनेके लिये विकल हो उठता है। वह अपनी पारिपार्श्विक परिस्थितियोंकी परवाह नहीं करता— लोगोंके उपहास और भर्त्स-नाओंपर ध्यान नहीं देता, समस्त प्रतिरोधोंको कुचलता हुआ आगे बढ़ता ही जाता है। यदि केवल अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये ही समस्त कर्मोद्यम सम्पादित हुए होते, तो आज बीसवीं सदी-के मर्त्यलोकके निवासियोंको जो-जो सुविधायें उपलब्ध है, वे शायद कल्पनाशील औपन्यासिकोंकी पुस्तकों तक ही सीमित रहतीं। यह कौन नहीं जानता कि वैज्ञानिकोंको, साहित्यिकोंको, सभ्यताके उन्नायकोंको अत्यधिक विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है? यदि उनके जीवनमें साधारण आवश्यकताओंकी चिन्ता उन्हे नहीं होती— यदि अपने बहुमूल्य समयका एक अंश उन्हें अन्न और वस्त्रकी उप-लब्धिके लिये बरबाद नहीं करना पड़ता, तो कौन कह सकता है कि उनकी प्रतिभाके चमत्कार आज पृथ्वीको वर्तमान अवस्थासे अधिक समृद्ध नहीं बना देते।

न जाने कितने ही वैज्ञानिक, न जाने कितने प्रतिभाशाली दार्श-निक वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें अपनी शक्तियोंका अनुचित उप-योग कर रहे हैं? अपनी जिन शक्तियोंसे वे नये-नये आविष्कार

करते,—अज्ञानान्धकारमें छिपे हुए अगणित रहस्योंका उद्घाटन करते, आज वे ही शक्तियां धनोपार्जनमें लगा रहे हैं। क्या ही अच्छा होता कि समाजवादमें अकर्मण्यताके प्रसारसे भयभीत होनेवाले महोदय मानव-जातिकी इस महती हानिको समझ पाते !

जहां स्वेच्छापूर्वक काम किया जाता है, वहां उन्नति भी होती है। किन्तु जहां विवश होकर अनिच्छापूवक केवल अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये ही परिश्रम करना पड़ता है, वहां दुःख-दैन्यके अतिरिक्त और किसी भी वस्तुकी आशा रखना मूर्खता है। मनुष्य अकर्मण्य होकर तो कभी जीवित रह ही नहीं सकता, काम तो उसे जीवित रहनेके लिये कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। कार्याभावमें दो ही परिणाम सम्भव हैं—(१) या तो अकर्मण्य व्यक्तिकी मृत्यु हो जायगी या (२) वह पागल हो जायगा। विभेद स्वेच्छापूर्वक वा अनिच्छापूर्वक कार्य करनेमें है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें अधिकांश व्यक्तियोंको अपनी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अपनी इच्छा एवं अभि-रुचिके प्रतिकूल कार्य करना पड़ता है। लेकिन समाजवादकी स्था-पना हो जानेसे ऐसा नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकताके अनुसार चीज प्राप्त करेगा। लेकिन वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें ऐसा होना असम्भव है। जब तक पूंजीवादका विनाश नहीं हो जाता है, तब तक इसी प्रकारका विपर्यय चलता रहेगा। न जाने कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्ति वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके कारण अकालमें ही काल-कव-

लित हो गये; न जाने कितने रवीन्द्र बाबू और जगदीशचन्द्र बोस, आज भारतवर्षमें हुए होते, यदि विज्ञान और साहित्यसे प्रेम रखनेवालोंको अपनी अभिरुचिके प्रतिकूल काम नहीं करना पड़ता! हेनरी जौर्जने अपनी "प्रगति और दारिद्र्य" नाम्नी पुस्तकमें सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक जीवनपर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है:-वर्तमान सामाजिक व्यवस्थासे जो भारी हानियां होरही हैं उनमें बौद्धिक शक्तिकी हानि सर्वाधिक है। गम्भीर विचारकों, आविष्कारकों, व्यवस्थापकों, दार्शनिकों इत्यादिकी न्यून संख्याका कारण यह नहीं है कि वे बहुत कम संख्यामें उत्पन्न होते हैं। वास्तविक कारण इसका यह है कि उन्हें अपनी प्रतिभाका विकास करनेका सुअवसर ही नहीं मिलता। दुनियामें ये जो इतने-इतने महापुरुष हुए हैं, यदि इन्हें सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियोंमें रख दिया जाता, तो आज इन्हें कोई भी नहीं जानता। जूलियस सीजर यदि किसी मजदूर परिवारमें जन्म ग्रहण करता;नेपोलियन यदि कुछ वर्ष पहले ही दुनियांमें आया होता; कोलम्बस यदि चर्चमें चला जाता तो उनकी शक्तियां क्या कर सकती थीं?

वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके पक्षपाती समाजवादपर जो अकर्मण्यताके प्रसारका आक्षेप करते हैं, इसका उत्तर तो इस लेखके आरम्भमें दिया जा चुका है। कर्म करना मनुष्यका स्वभाव है। लेकिन एक शङ्का और हो सकती है,और वह यह,कि आखिर बहुतसे मनुष्य परिश्रमसे जी क्यों चुराते हैं? क्यों कुली और मजदूरोंपर निगरानी रखनेके लिये एक निरीक्षककी आवश्यकता है? विद्वान

लेखक हेनरी जार्जने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए लिखा है:—मानव परिश्रम करनेसे घृणा नहीं करता। कार्य करनेकी स्वाभाविक आवश्यकता अभिशापस्वरूप नहीं है। लेकिन घृणा तो उसे उस परिश्रमसे है,—अभिशाप तो वह उस परिश्रमको समझता है, जिसके परिणामोंको वह नही देख सकता;रात-दिन परिश्रम करनेके उपरान्त भी केवल जीवित रहने मात्रके लिये पारिश्रमिक पाना कितना नारकीय दण्ड है! यदि वे आवश्यकताओंसे छुटकारा पा जायें तो वे अपनी अभिरुचिके अनुकूल कार्य करेंगे और तभी उन्हें यह मालूम होगा कि वे वास्तवमें ऐसा कार्य कर रहे हैं, जो उपयोगी है।

सचमुच वह समाज कितना सुन्दर होगा, जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यताके अनुसार कार्य करेगा और अपने परिश्रममें पूर्ण आनन्दोपलब्धि करते हुए जीवन-पथपर चलेगा;—जिसमें आजकी भाँति बिना किसी प्रकारका श्रम किये हुएही श्रमिकोंके श्रमका अनुचित उपभोग करनेवाले पूंजोपतियोंका अस्तित्व भो नहीं रह जायगा;जिसमें आजकी तरह फिलासफीके विद्यार्थीको आफिसमें क्लर्की नहीं करनी पड़ेगी और साहित्यिकको कण्डक्टर नहीं बनना पड़ेगा,—जिसमें बेकारी नामकी कोई चीज ही नहीं रह जायगी। आजकी तरह उस सामाजिक व्यवस्थामें प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना नहीं करना पड़ेगा। सच्चा कर्मयोग, जिसके लिये आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आदेश दिया था, समाजवादकी स्थापना होनेसे ही प्रचलित हो सकता है। आज यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकारका भी कार्य करता है तो उसे ईर्ष्या, द्वेष,वासना, लोभ इत्यादिसे अभि-

भूत होना ही पड़ता है। अपने पड़ोसीको पराजित किये बिना आज का कर्मशील व्यक्ति रोटीकी समस्या हल करनेमें भी अपनेको असमर्थ समझने लगता है। सर्वत्र एक प्रकारका संघर्ष,—मानव-जातिको, मानव सभ्यताको असीम हानि पहुंचानेवाला कुत्सित संघर्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। लेकिन वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाका मूलोच्छेद करके जिस स्वर्गोपम समाजकी स्थापनाके लिये आज इस पृथ्वीके कतिपय महाप्राण व्यक्ति सतत प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें तो वर्तमान कुत्सित संघर्षकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी; क्योंकि तब प्रत्येक व्यक्तिकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति समाजके द्वारा हुआ करेगी और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुसार मानव-जातिकी सेवा करेगा एवं प्रत्येक प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी अभिरुचिके अनुसार मानव-सभ्यताको उन्नत करनेके प्रयासमें निरत होगा। दारिद्र्य,जिसे नरककी लासे भी भयङ्कर बतलाया गया है; जिससे समस्त दुर्गुणोंकी उत्पत्ति होती है, जो सकल गुणोंका नाश करनेवाला है, जिसके भयसे अगणित युवक आत्महत्या कर लेते हैं, उस समय अस्तित्वहीन हो जायगा और जब तक यह सुवर्ण-युग आरम्भ नहीं हो जाता, तब तक सदैव हतभाग्य मानव जातिके योग्यतम व्यक्ति रोते रहेंगे:—

किस्मतसे ही लाचार हूं ऐ जौक वगर्ना।
सब फनमें हूं मैं ताक मुझे क्या नहीं आता!

क्रान्ति के कण्टकाकीर्ण मार्ग में

विप्लवी तरुणोंके पास ज्यादा उलझनें नहीं होतीं। शंकाओंके बादल उनके मानस-गगनमें कभी नहीं घिरते। उनका तो एक ही मार्ग होता है,—कण्टकोंसे अकीर्ण बन्धुर मार्ग। उसी से होकर उन्हें जाना होता है अपने लक्ष्यकी ओर,—अपनी मंजिलकी ओर! जबतक वे मंजिल तक नहीं पहुंच जाते तबतक उनके अंतर्देशमें धधकनेवाली अग्नि प्रशमित नहीं होती! खाइ-योंको लाँघते हुए, पर्वतमालाओंको पार करते हुए, महोदधिके प्रचण्ड तरंगाभिघातकी तनिक भी परवाह न करते हुए चले चलते है अपनी मंजिल की ओर!

क्रान्तिके पथमें राकाका सुधाकर पीयूष-वर्षण करता हुआ राशि-राशि प्रेमोन्मादकी सृष्टि नहीं करता! वाम और दक्षिण पार्श्वमें स्थित विटपी-दलोंपर बैठे हुए कोक-कोकियोंका दारुण शोक क्रान्ति-पथके तापस पथिकोंके मानस-लोकमें किसी प्रेयसीकी विरहाकुल स्मृति जागृत नहीं करता! रजनीगंधा वा कुमुदिनीकी शरच्चन्द्रिका-स्नात सौरभ-श्री उन्हे प्रणय-पीड़ित नहीं कर पाती! वे तरुण तपस्वी तो निरन्तर एक ही भावनासे,—एक ही उद्देश्य-प्राप्तिकी दुर्निवार लालसासे अनुप्राणित रहते हैं! जीवनमें अन्य कोई लालसा नहीं, कोई आशा,— कोई आकांक्षा नहीं! प्राणोंमें प्रविष्ट हो कर समस्त शरीरको झनझना देने वाला एक ही प्रचण्ड संकल्प उनके मानसमें ओतप्रोत भावसे विद्यमान रहता है! उन पथिकोंकी कल्पना सदैव उसी महदुद्देश्यके प्राणप्रद स्पर्शसे विह्वल रहती है! शारद् चन्द्रिकाके स्थानमें ग्रीष्मके दिवाकरकी किरणें उनके पथमें ताण्डव करती रहती हैं! विहगोंकी कोमल-कान्त ध्वनियां उनके हृदयको लक्ष्य प्राप्त करनेके लिये एक नूतन सन्देश सुनाया करती हैं। कंटकोंकी चुभन उन्हें पुष्पोंके कोमल एवं मसृण स्पर्शसे कहीं अधिक मनोहर मालूम होती है।

उन विप्लवकारी तरुणोंके मस्तिष्कमें हजारों तूफानोंसे भी बढ़ कर प्रलयंकर विचार शोर मचाते रहते हैं! मिथ्या शान्ति और

नश्वर सुख उनके जीवनमें नहीं प्रविष्ट हो पाता ! एक महान् असन्तोषकी महावह्नि सदैव,—निशिवासर उनके प्राणोंमें प्रज्वलित रहती है। जीवनकी समस्त क्षुद्र एवं कलुषित लालसाएँ,—परम्परागत क्लीब विचार, शताब्दियोंका मिथ्या मोह-जाल उस प्रचण्ड हुताशनमें भस्मसात् हो जाते है ! केवल एक ही वस्तु उस प्रचण्ड हुताशनमें भी 'प्रह्लाद' की भांति स्थिर और निश्चिन्त रहती है, और वह है,—'विप्लवकी दुर्दान्त कामना !'

विप्लवकारी तरुणोंका जीवन एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें उपन्यासकारने कहीं भी सुख या वैभव-विलासका चित्रण नहीं किया है। जिसमें संकटापन्न परिस्थितियां और तूफानोंका संघषण ही भराहुआ है ! सचमुच, विप्लवकारियोंका जीवन वसन्त-सेवित नन्दन-कानन नहीं; मलय-सुवासित सहकार-सङ्कुल उपवन नहीं, मरुस्थलीकोविस्तृत बालुका-राशि है, जिसमें सूर्यकी किरणें निरन्तर नृत्य करती रहती हैं !

विप्लवी तरुणोंके पास ज्यादा उलझनें नहीं होतीं। अधिक माथापच्ची उन्हें नहीं करनी पड़ती। तर्क वितर्क, विचार-विमर्श, ऊहापोह इत्यादिका कोई स्थान उनके जीवनमें नहीं रहता ! शंकाओंके वादल उनके मानस-गगनमें कभी नहीं घिरते ! उनका तो एक ही मार्ग होता है,—कंटकोंसे आकीर्ण वन्धुर मार्ग ! उसीसे होकर उन्हें जाना होता है अपने लक्ष्यकी ओर,—अपनी 'मंजिल' की ओर ! जब तक वे मञ्जिल तक नहीं पहुंच जाते, तब तक उनके अन्तर्देशमें धधकनेवाली अग्नि प्रशमित नहीं होती ! खाइयोंको लांघते

हुए, पर्वतमालाओंको पार करते हुए, महोदधिके प्रचण्ड तरंगाभि-घातकी तनिक भी परवाह न करते हुए चले चलते हैं अपनी मञ्जि-लकी ओर !

सुख और वैभव उनके समक्ष आते हैं और प्रलोभनमयी वाणीमें कहते हैं—आओ ! मेरे इस कनक-खचित गगनचुम्बी प्रासादमें आ कर कुछ दिन बिता जाओ ! मार्गमें सिसकती हुई जीवन-निशाओं को मेरी शीतल छायामें,—मेरे ऐश्वर्यकी सुखद गोदमें विश्राम करने दो ! क्यों दीवाने बने हो ? आओ, प्रणय और भोगकी चंचल वीचि-योंमें जीवन-नौकाको बहने दो; क्यों व्यर्थ उसे महोदधिका प्रचण्ड तरंगाभिघात सहन करने देते हो ? यौवनकी कुटियामें अलख जगाते फिरने वाले ओ महासाधक ! मेरा सारा हर्षोल्लास तुम्हारे चरणों तले निवेदित है !"

किन्तु वे विप्लवी तरुण तपस्वी एक उपेक्षा भरी हंसी हंस कर आगे को बढ़ जाते हैं ! अग्निकी लपटें उनका स्वागत करती है, उनके चरणोंको चूमती हैं।

(२)

परिवर्तन !—क्रान्ति !!—विप्लव !!!

सचमुच, कितने सुन्दर हैं ये शब्द ! कितना राशि-राशि आक-र्षण भरा हुआ है इन शब्दोंमें ! संसारके समस्त मनीषी आज इन्हीं में मानव-जातिकी वर्तमान हीनावस्थाको विदूरित करनेकी एकमात्र औषधि पाते हैं ! वर्तमान मानव-जातिकी हीनावस्थाका प्रमुख कारण वर्तमान सामाजिक व्यवस्था है। और वर्तमान सामाजिक

व्यवस्थाके अस्तित्वका कारण है युवकोंकी जड़ता—परम्परागत मोह-जाल,—शक्ति-राहित्य,—हृदय-दौर्बल्य एवं वस्तुस्थितिसे अनभिज्ञता ! जब ज्ञानके साथ कर्मका संयोग होता है, तभी विप्लवकी सृष्टि होती है !

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एक भयङ्कर दुष्टता है। बदमाशोंकी, स्वार्थी दगाबाजोंकी चालबाजीने ही समाजको वर्तमान रूप प्रदान किया है ! विज्ञानकी प्रगतिने इस पृथ्वीको स्वर्गतुल्य बना दिया होता; यदि आज पूंजीवादके कर्कश कशाघातने अनेकानेक प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको,—अनेकानेक मनीषी वैज्ञानिकोंको अपनी शक्तियोंका दुरुपयोग करनेके लिये विवश नहीं किया होता ! यह पृथ्वी आज घोर रौरवमें परिणत हो गयी है और इसे पुनः स्वर्गतुल्य बनानेके लिये क्रांतिके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं !

दुनियांमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं; जो यह कहा करते हैं कि भाई, क्रान्ति-क्रान्ति क्यों चिल्लाते हो ? क्रान्तिसे महानाशके सिवा और क्या हो सकता है ? विध्वंस-लीलाकी सृष्टि करके तुम मानव सभ्यताका क्या उपकार साधन कर सकोगे ? देखो, हमलोग समाजकी उन्नतिके प्रयास तो कर ही रहे हैं। जहां अवनतिकी क्षीणातिक्षीण झलक भी दिखायी देती है, वहां हमलोग पहुंचते हैं, वस्तुस्थितिका अध्ययन करते हैं और सुधारकी आप्राण चेष्टा किया करते हैं ! इससे ज्यादा इस समय और कुछ नहीं हो सकता ! हमलोग सब ठीक कर देंगे ! धैर्य रखो। अधीर होनेसे काम नहीं चलता है।...

लेकिन उनकी इन बातोंमें उतना ही सार है, जितना एक तृषातुर व्यक्तिके प्रति एक लंगड़े वृद्धकी इस उक्तिमें कि ठहरो, हाय-तौबा क्यों मचाते हो ? पानी ही तुम्हें चाहिये ? ज्यादा दूर तो है नहीं, केवल चार सौ कोसके बाद यह मरुभूमि समाप्त हो जाती है मैं जाकर ला देता हूं !......

कहनेका तात्पर्य यह है कि वर्तमान दुरवस्था तथाकथित सुधारकोंके प्रयत्नोंसे दूर नहीं हो सकती। ये सुधार-सुधार चिल्लाते हैं। सभा सोसाइटियां करते हैं, भाड़ेपर व्याख्याता बुलाकर उनसे व्याख्यान दिलाते हैं! जनतापर अपना रोब गालिब करते हैं! मानव-समाजकी दो-एक त्रुटियोंको लेकर इधर-उधर निस्सार आन्दोलन करते हैं! झूठे प्रदर्शन करके लोगोंको दिखलाते हैं कि देखो, हमने तुम्हारे लिये इतना कष्ट सहन किया !......जो अज्ञ होते हैं,—वस्तुस्थितिसे अनभिज्ञ होते हैं, वे उनके वाग्जालमें फंस जाते हैं! लेकिन जिनके मस्तिष्कमें सत्यासत्यकी विवेचना-शक्ति अल्प मात्रामें भी होती है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि इन बातोंमें केवल प्रवञ्चना है !

ये सुधारक स्वयं तो प्रतिमास हजारों रुपये खर्च करते हैं, भोग विलासके समस्त साधनोंको एकत्रित करते रहते हैं, मखमली बिछौनोंपर सोते हैं, सुस्वादु भोजनसे रसनाकी तृप्ति करते हैं, परन्तु किसी प्रतिभाशाली नवयुवकको, जो बेकारीके दानवी भीमचक्रमें निष्पेषित हो रहा है—वे पचीस–तीसकी नौकरी देकर या दिलाकर गर्वान्वित हो उठते हैं और बड़े अभिमानके साथ कहते हैं कि

ये विप्लववादी व्यर्थ ही इतना तूफान खड़ा किये हुए हैं! हम बेका-रीको दूर करनेका सक्रिय प्रयास कर रहे हैं।

लेकिन दुनियांके रहनेवाले अब यह जान गये हैं कि कौन उन्हें ठग रहे हैं और कौन उनकी सच्ची भलाई कर रहे हैं। गत बीस वर्षोंके अन्दर दुनियांके राजनीतिक मञ्चपर जो उलट फेर हुए हैं, उनसे यह भलीभांति प्रमाणित होगया है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन हुए विना मानव-जातिके साम्प्रतिक दुःख दारिद्र्यको दूरीकृत नहीं किया जा सकता।

सब उपाय झूठे हैं,—मिथ्या है! वर्तमान दुरवस्थाको दूर कर-नेका एकमात्र उपाय है—महाक्रान्ति!

(३)

लेकिन यह क्रान्ति किसी देश विशेष लिये नहीं होगी, किसी जाति या किसी खास समाजको लक्ष्य करके इसका उद्भव नहीं होगा! यह सर्वतोमुखी एवं सर्व व्यापी होगी! प्राचीसे लेकर प्रतीची तक यह समस्त गगन--मण्डलको परिव्याप्त कर लेगी! समग्र संसार इसके आगमनसे विह्वल हो उठेगा!—जो शोषक होंगे; वे शोकसे और जो शोषित, वन्दी और निपीड़ित होंगे, वे हर्षसे! संसारमें आज निपीड़ितोंकी,—शोषितोंकी,—जञ्जीरोंमें जकड़े हुए वन्दियोंकी संख्या ज्यादा है! सताये जानेवाले गरीबोंकी संख्याके सामने सता-नेवाले अमीर दालमें नमकके बराबर भी नहीं हैं। कतिपय पूंजी-पतियोंके दानवी चक्रमें आज कोटि—कोटि प्राणी पीसे जा रहे हैं। अहर्निश परिश्रम करते हैं, किन्तु फिर भी न तो पेटभर भोजन ही

मिलता है और न पहनने योग्य कपड़े ही। बेचारे किसी तरह जिन्दगी बसर कर रहे हैं! जीवनमें कोई रस, कोई आकर्षण, कोई म्रदिमा मधुरिमा नहीं अवशिष्ट रह गयी है। एक विचित्र अभि-शाप-भारसे सारा जीवन वृद्धकी कमरकी तरह झुका हुआ है! मानव-जातिके निन्यानवे प्रतिशत व्यक्तियोंका जीवन आज एक विपुल व्यर्थतामें परिणत हो गया है। वे जो करते हैं, उसमें उन्हें किसी रसकी उपलब्धि नहीं होती! केवल उदर-पूर्तिके लिये ही वे घंटों तक परिश्रम करते रहते हैं! जो मानसिक श्रम करनेवाले हैं,वे और जो शारीरिक श्रम करने वाले हैं वे, दोनों ही आज इतने ज्यादा शोषित हो रहे हैं,—इतने ज्यादा सताये जा रहे हैं कि कुछ कहा नहीं जाता! केवल जीविका-अर्जनके लिये बड़ासे बड़ा साहित्यिक छोटेसे छोटे पूंजीपतिके यहां नौकरी स्वीकार कर लेता है! कर क्या लेता है, उसे विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है! एक या दो नहीं, आज इस पृथ्वीपर—सूर्यकी परिक्रमा देनेवाले इस क्षुद्र एवं नगण्य ग्रहपर ऐसे अनेकानेक प्रतिभाशाली विद्वान् हैं, जो प्रतिकूल परिस्थितियोंमें पड़कर अपनी शक्तियोंका नाश कर रहे हैं!..... कहनेका तात्पर्य यह है कि लाञ्छित एवं निपीड़ित मानवोंकी संख्या इस समय बहुत ज्यादा है। अतएव क्रान्तिका तूफान यदि कतिपय इने गिने स्वार्थी पूँजीपतियों या काफी वेतन पानेवालोंको शोकान्वित करेगा तो करोड़ों मानवोंके प्राणोंमें एक नूतन आशा और नूतन उल्लास भी सन्निविष्ट करनेमें समर्थ हो सकेगा! मानव-जातिके निन्यानबे प्रतिशत व्यक्ति जिस नैराश्य-तिमिरमें खोये-खोयेसे फिर

रहे हैं, उसे दूर करके आशाकी प्राभातिक किरणें वितरित करनेकी शक्ति केवल क्रान्तिमें ही है !

संसारके समस्त मानसिक एवं शारीरिक श्रमजीवी आज ऐक्य सूत्रमें आबद्ध होकर महाक्रान्तिका आह्वान करें, यह मानव-जातिके हितैषी सभी मनीषियोंका आदेश है !

लेकिन इस क्रान्तिका सूत्रपात किसी एक क्षेत्रमें नहीं, अपितु सभी क्षेत्रोंमें होगा। सर्वत्र एक विचित्र प्रकारकी दुर्गति दृष्टिगोचर हो रही है। कोई भी क्षेत्र आज सन्तोषजनक अवस्थामें नहीं !

सारे कुकृत्योंका कारण—

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था

(जिस सामाजिक व्यवस्थामें कुछ व्यक्तियोंके सुखके लिये अधिकांश व्यक्तियोंको जीवनकी समस्त महत्वाकांक्षाओंकी हत्या कर देनी पड़े, जिस सामाजिक व्यवस्थामें प्रतिभाशाली व्य-क्तियोंको रोटीके लिये दूसरोंकी गुलामी करनी पड़े,—सुंदर और संगीतज्ञा स्त्रियोंको अपने इहलौकिक अस्तित्वकी सुरक्षाके लिये प्रेमका बलिदान करके रूपाजीवा बनना पड़े, वह कितने दिनों तक टिक सकती है ?)

(१)

सांध्य-सुछविसे अपने दिवा-परिश्रान्त चित्तको आनन्दित करनेके लिये मैं यूरोपियन क्लबकी ओर टहलनेके लिये जा रहा था। राँचीमें जिन-जिन स्थानोंका प्राकृतिक सौन्दर्य हृदय-देशके कविको भावनाओंकी वारुणी पिलाया करता है, उनमें यूरोपियन क्लबको जानेवाली सड़क भी एक है।

मैं 'माया महल' तक पहुंचा ही था कि एक मित्रने 'शेक हैण्ड' करते हुए कहा—'सावित्री' देखने नहीं चलोगे ?

अशोककुमार और देविकारानीका अभिनय देखनेके लिये मैं सदैव लालायित रहा करता हूं। अतः मुस्करा कर कहा—चलो, पहले टहल आयें, उसके बाद देखेंगे; अभी तो समय काफी है।

'लेकिन फिर जगह नहीं मिलेगी'—मेरे मित्रने सावित्रीको देखने की अदम्य आकांक्षा प्रकट करते हुए कहा।

'तो चलो।'

दो टिकट लेकर हमलोगोंने हौलके अन्दर प्रवेश किया।

तमाशा आरम्भ हुआ, इण्टरवल हुआ और समाप्त होगया! मेरे मित्रने अनुरोधपूर्वक कहा—'चलो,···के यहां किसीका विवाह है। एक गानेवाली भी बुलायी गयी है। चलो, गाना सुनकर मन बहलायें।'

'चलो, लेकिन पहले यह तो बतला दो कि संगीतज्ञा रूपसीका नाम क्या है?"

'नाम तो मुझे मालूम नहीं; न जाने. कौन बाई हैं। खैर, नामसे हमलोगोंको क्या, गाना सुनकर चले आयंगे।'

(२)

एक सारंगीवाला, एक हारमोनियमवाला, और एक तबलेवाला। इन तीनोंके आगे बैठी हुई थी एक गायिका, और गायिकाकी ओर आंखें गड़ाये बैठे हुए थे करीब चालीस-पचास आदमी। कोई सिगरेट पी रहा था,कोई केवल पान चबाकर ही सन्तोष कर रहा था

तवायफने गाना शुरू किया—'ना मैं मांगूं चांदी-सोना……रे, ना मैं मांगूं चांदी-सोना!"

उपस्थित श्रोताओंमें मेरे कई अन्य मित्र भी थे। मैंने एकसे कहा—'स्वर सुमधुर नहीं है।'

'गाते-गाते गला बैठ गया है'—उसने कहा।

सचमुच उस गायिकाका गला बैठ गया था, फिर भी गाये ही जा रही थी। रह-रहकर बड़ी ही आकर्षक मुस्कराहटके साथ रूमाल को उँगलियोंमें लपेट लेती थी।

'तो तू कुण-सी चीज मांग ह?'—उपस्थित श्रोताओंमेंसे. एकने कहा।

गायिकाने मुस्करा कर उनकी ओर देखा और आंखोंमें राशि-राशि मदिरा भरकर उन्हें पागल बना डालनेकी कोशिशकी।

मैं गीत सुनने आया था, सौन्दर्य देखने भी। सौन्दर्य मेरी निगाहोंमें बहुत ही पवित्र वस्तु है और मायाके इस भ्रामक प्रदेशमें यही एक ऐसी चीज है जो प्राणोंको 'प्रिय' का शाश्वत सन्देश सुनानेमें समर्थ हो सकती है।

गायिकाका गला बैठा हुआ था, अतः गीत गानेमें वह सर्वथा असफल हो रही थी। लेकिन उसके पाउडरसे शृङ्गारित चेहरेमें एक आकर्षण अवश्य था। नारंगी रङ्गकी एक रेशमी साड़ी उसके शरीर को ढंके हुए थी। चारों तरफसे लोगोंकी निगाह उसकी निगाहसे टकरा रही थी।

दो-चार गाने हुए, उसके बाद भोजनके लिये लोग एक-एक करके जाने लगे। मेरे मित्रने मुझसे भी अनुरोध किया, लेकिन मैंने नम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए अपनी राह ली।

रातके ग्यारह बज गये थे और सड़कोंपर दार्शनिक विषयोंका चिन्तन करनेके लिये यथेष्ट नीरवता थी। रह-रहकर हवा वृक्षोंको विकम्पित करके एक प्रकारकी शोख़ी-सी दिखला जाती थी।

मैं उस जनशून्य सड़कपर चलता हुआ सोचनेलगा—आखिर, यह विभेद क्यों? उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुवका यह अन्तरक्यों? कहां तो यमराजको भी परास्त कर देनेवाली सतो सावित्री, और कहां अनेक अपरिचित, और अधिक अंशोंमें, कुरूप व्यक्तियोंके सामने वासनाके गीत गानेवाली यह वेश्या····· !

यह विभेद क्यों?

सावित्रीने एक नृपतिके यहां जन्म ग्रहण किया। सभी प्रकारके

सुखश्वर्यमें उसका पालन-पोषण हुआ। स्वर्ण-खचित महलोंमें उसके शैशवने अपनी चञ्चलता और निश्चिन्तताके गायन गाये, कुसुमभारानता द्रुम-शाखाओंके साथ कल्पना-क्रीड़ा की।

किशोरावस्थाके आगमनने उसके शरीरकी अपरिसीम श्री-वृद्धि की। सौन्दर्यके देवताने मुस्कुरा-मुस्कुरा कर उसके नवनीत-कोमल अङ्गोंपर मदिराकी वर्षा की। लोग सोचते थे—"सचमुच वह राजकुमार कितना सौभाग्यशाली होगा, जिसको यह हेमवती सावित्री प्रेमकी—हृदयके स्वर्ण-पात्रमें छलकते हुए अनुरागकी अपरिसीम आकांक्षा लेकर पतिके रूपमें वरण करेगी!"

लेकिन सावित्रीके हृदयने अपनेको उलझा लिया—एक निर्धन क्षत्रियकुमारके सौन्दर्य-पाशमें!

रानीने कहा—'बेटी, तूने यह क्या किया?'

राजाने कहा—'सावित्री, मैं तुम्हें अखण्ड सौभाग्यवती देखना ।५ हूं। सत्यवानके अतिरिक्त किसी भी सुयोग्य वरसे तू विवाह कर ले।'

ज्योतिषीने—जन्म और मरणके रहस्यको समझनेवाले ज्योतिषीने सत्यवानके ऊपर आनेवाली महान विपत्तिकी आशङ्का प्रकट की। देवर्षि नारदने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया—'एक वर्षके उपरान्त सत्यवानको ले जानेके लिये यमदूत आयेंगे।'

राजा और रानी, दोनों ही यह सुनकर स्तब्ध हो गये! सावित्रीने भी यह सुना, लेकिन उसके हृदय-देशमें प्रेमका देवता मुस्कुरा

रहा था। उसने अपनी सहज और मधुर भाषामें सावित्रीको कहा—'प्रेम मृत्यु और जीवनकी परवाह नहीं करता। उसकी शक्ति मृत्युकी शक्तिसे कहीं अधिक है। जीवनमें केवल एकको ही सच्चा प्रेम किया जा सकता है। सत्यवानके अतिरिक्त मेरे लिये संसारमें और कोई नहीं।'

अन्ततोगत्वा सावित्रीने—राजकुमारी सावित्रीने उस भाग्य-हीन क्षत्रियकुमारके साथ विवाह कर लिया और सच्ची प्रेम साध-नासे, घोर तपस्यासे मृत्युको भी परास्त कर दिया!

अब दूसरी ओर है यह वेश्या। सावित्री और सत्यवानकी कथा एक वास्तविकताके आधार पर है या कविकी कोरी कल्पना है, यह निश्चयपूर्वक कहनेमें मैं अपनेको असमर्थ पाता हूं। लेकिन यह वेश्या, जो अनेक प्रकारके पुरुषोंके सामने बैठकर गीत गा रही थी, नाज-नखरे दिखा रही थी, यह तो एक ऐसा सत्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। आखिर कौन सा ऐसा कारण है, जो यह युवती अपने सौन्दर्यको सरेबाजार बेच रही है।

कुछ लोग कहेंगे, विषय-भोगकी लालसा बड़ी बलवती होती है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कामदेवके सामने पराजित हो गये। विश्वामित्र सरीखे तपस्वीको भी मन्मथके केशर-शरने विकल कर दिया, फिर यह तो एक साधारण औरत है। भोग-विलासकी कामनासे प्रेरित होकर ही इसने वेश्यावृत्ति अख्तियार की है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण क्या हो सकता है?

कुछ लोग कहेंगे, लड़कपनमें विधवा हो गयी होगी। मुहल्लेके किसी बदमाश और लम्पट, मगर चालाक नवयुवकसे फंस गयी होगी। समय पाकर उसने इसे भागनेकी सलाह दी होगी और किसी दिन नैश-तिमिरमें दोनों भाग निकले होंगे—जीवनका सुख लूटनेके लिये! इसी तरह कुछ दिनोंतक पारस्परिक प्रणय-सम्बन्ध रहा होगा। फिर युवक इससे ऊबकर कहीं दूसरी जगह चला गया होगा। अपनेको असहाय एवं निराश्रिता पाकर इसने वेश्या-वृत्ति ग्रहण कर ली; चलो छुट्टी हुई!

इसी तरह लोग नाना प्रकारकी बातें कहेंगे और अन्तमें मुसकराकर ऐसे विषयोंको वार्तालापके सुसभ्य दायरेमें न लाना ही पसन्द करेंगे। लेकिन इन बातोंकी अवहेलना करके मानव-समाज अपनी भारी हानि कर रहा है। विश्वमें सर्वत्र एक नियम विद्यमान है और वह नियम जब मानवके द्वारा या अन्य किसी भी प्राणीके द्वारा व्यतिक्रान्त होता है, तो यह सुनिश्चित है कि वह —न-किसी प्रकारका निर्णय करके ही रहता है।

जो लोग वेश्याको निर्लज्ज होकर अनेकानेक पुरुषोंके सामने गीत गाते हुए एवं सौन्दर्यका विक्रय करते हुए देखकर उसे अन्य स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक भोग-विलास चाहनेवाली समझने लगते हैं, उनकी बुद्धिपर जिसको दया न आये, वह वास्तवमें स्वयं दयाका पात्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भोग-विलासकी दुर्दान्त कामना जब अन्तस्तलको आलोड़ित-विलोड़ित करने लगती है, समस्त सामाजिक एवं धार्मिक बन्धनोंके प्रति विद्रोह मचाने लगती

है, उस समयका अन्तर्द्वन्द्व महा भयानक होता है, उसमें विजयी होकर निकलना सामान्य मनुष्योंका काम नहीं है। काम-वासना अन्य सभी वासनाओंसे अधिक प्रबल है। इससे अभिभूत होकर मानव कभी-कभी तो ऐसे-ऐसे कुकृत्य कर डालता है, जो शराबके नशेकी हालतमें भी वह नहीं कर सकता। लेकिन यदि भोग-विलासकी काम-वासनाओंकी पूर्त्तिकी कीमत आवश्यकतासे अधिक मांगी जाय, यदि इसकी कीमत किसीको प्राणोंसे चुकानेको कहा जाय, यदि क्षणिक विलासके बदले किसीसे आजन्म कारावासकी सजा भुगतनेको कहा जाय, तो यह निश्चित है कि कोई भी व्यक्ति अपनी वासनाओंकी तृप्तिके लिये इतनी कड़ी कीमत देनेको तैयार नहीं होगा। यह वेश्या—सौन्दर्य एवं आकर्षणको अपने शरीरपर बिखेरकर, अगणित अपरिचित पुरुषोंके समक्ष नृत्य करनेवाली यह रूपसी, हो सकता है कि भोग-विलासकी अत्यधिक इच्छुक हो। हो सकता है, इसके यौवन-शतदलके सौन्दर्य-परिमलमें वासना ही अधिक हो, प्रेम नहीं। लेकिन अपनी वासनाकी पूर्त्ति क्या यह किसी दूसरी तरह नहीं कर सकती थी? क्या वेश्यावृत्ति अख्तियार किये बिना इसकी आकांक्षाएं तृप्त नहीं हो सकती थीं? क्या अपने हृदयकी लालसाओंको पूर्ण करनेके लिये इतना बड़ा भारी बलिदान किये बिना इसका काम नहीं चल सकता था?

प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें किसी एक-दूसरे व्यक्तिको 'अपना' कह कर पुकारनेकी एक स्वाभाविक लालसा होती है। किसी प्रेम-पात्र के कोकनद-कोमल चरणोंको चूमकर अपने विशुष्क ओठोंकी प्यास

मिटा लेनेकी कामना प्रायः सभीके हृदयको विकल करती रहती है।... लेकिन वेश्याके लिये ऐसा सुअवसर कहां ? पुरुष समाज उसे अपनी वासनाकी पूर्त्तिका एक साधन भी बनाता है और फिर उसे अत्यन्त हेय दृष्टिसे देखता है ! प्यार नामकी कोई चीज उसके जीवन-घटमें प्रवेश नहीं करने पाती। वह तो ऊपरसे नीचेतक हलाहलसे परिपूर्ण रहता है। अनेक प्रकारके घृणित नर-पशुओंके साथ प्रेमालाप करने वाली वह रूपसी, जिसे रूपाजीवा कहा जाता है, आखिर रूपाजीवा क्यों है ? क्या सौन्दर्य ऐसी तुच्छ वस्तु है, जिसे रोटीके लिये—अच्छे-अच्छे कपड़ोंके लिये अनधिकारी व्यक्तियोंके हाथों बेच दिया जाय ?

भोग-विलासकी लालसा नहीं, वेश्यावृत्ति करनेकी प्राकृतिकप्रवृत्ति नहीं, अगणित पुरुषोंको उंगलियोंपर नचानेकी अभिमानपूर्ण कामना नहीं, इस पतनका—मानवताके इस अपमानका जो प्रमुख कारण है, वह है वर्तमान सामाजिक व्यवस्था। जिस समाजमें एक ओर तो कुरूप और गुणरहित स्त्रियां—साहित्य-संगीत-कलाविहीन स्त्रियां महलोंके अन्दर मखमली बिछौनोंपर आराम करें और दूसरी ओर संगीतज्ञा रूपसियोंको उदर-पूर्त्तिके लिये अपने जीवनकी समस्त लालसाओंको विनष्ट कर देना पड़े; जिस समाजमें योग्यताकी कुछ भी कद्र न हो और प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको रोटीके लिये पूंजी-पतियोंकी दासता स्वीकार करनी पड़े, उसका विनाश-साधन जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा !

वर्तमान सभ्यता, जो पूंजीवाद पर टिकी हुई है, अधिक दिनों-तक जीवित नहीं रह सकती। इसका विनाश होगा, और बहुत

शीघ्र होगा। संसारमें वही चीज रह सकती है,जो न्यायका-सत्यका, स्वतन्त्रताका अनुगमन करती है; शेष सब चीजें शीघ्रातिशीघ्र विनष्ट हो जाती हैं।

जिस सामाजिक व्यवस्थामें कुछ व्यक्तियोंके सुखके लिये अधिकांश व्यक्तियोंको जीवनकी समस्त महत्वाकांक्षाओंकी हत्या कर देनी पड़े, जिस सामाजिक व्यवस्थामें प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको रोटीके लिये दूसरोंकी गुलामी करनी पड़े,—सुन्दर और संगीतज्ञा स्त्रियोंको अपने इहलौकिक अस्तित्वकी सुरक्षाके लिये प्रेमका बलिदान करके रूपाजीवा बनना पड़े, वह कितने दिनोंतक टिक सकती है? स्वेच्छासे कोई भी लेखक किसी पूंजीपतिका गुलाम बनकर उसकी आज्ञाओंके अनुसार पुस्तकें नहीं लिख सकता है! स्वेच्छासे कोई भी प्रतिभाशाली चित्रकार अपनी शक्तियोंकी अवहेलना करके धनिकोंकी अभिरुचिके अनुसार वासनोद्दीपक चित्रोंकी सृष्टि नहीं कर सकता है। स्वेच्छासे कोई भी संगीतज्ञा स्त्री अपनी कलाका प्रदर्शन ऐरे-गैरे कमीनोंके सामने नहीं कर सकती है। इन समस्त विपर्ययोंका एकमात्र कारण वर्तमान सामाजिक व्यवस्था है। स्वतन्त्रता ही शक्ति, साहस, धन, ज्ञान, आविष्कार इत्यादिकी जननी है। जहां स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, वहां सभी प्रकारके दुख-दारिद्र्योंका प्रवेश अवश्यम्भावी है; संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है।

संसारके दार्शनिक भले ही वर्षों तक इन सामाजिक व्यभिचारों के विरुद्ध प्रचार करते रहें, भले ही अधिकारसम्पन्न व्यक्ति नित्य

नये कानूनोंकी सृष्टि करके वेश्यावृत्तिका मूलोच्छेद करनेकी प्रचेष्टाओंमें संलग्न रहें, नये-नये पैगम्बर और मसीहा इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर पतिता स्त्रियोंके—पतित पुरुषोंके उद्धारके लिये समस्त विपत्तियोंको वरण करते फिरें, लेकिन जबतक वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता, 'जबतक योग्यताके अनुसार कर्म और आवश्यकताके अनुसार वितरण' के सिद्धान्तका प्रचलन नहीं हो जाता, तबतक वेश्यावृत्ति बन्द नहीं हो सकती। मानव-जातिकी वर्तमान उन्नति एक विडम्बनामात्र है।

(४)

सौन्दर्य और संगीत, इन दोनोंका जहां सम्मिलन होता है, वहां स्वर्गकी सुषमा मुसकराती है और पारिजात-परिमल वहांके पवनके क्रोड़में क्रीड़ा करता है। सौन्दर्य और संगीत, ये दोनों इस मर्त्यलोकके मोह-तिमिराच्छन्न कारागारमें 'प्रिय' की स्मृतिका प्रकाश विकीर्ण करनेवाले दो देवदूत हैं! अज्ञानके निशीथमें 'प्रिय' का सन्देश सुनानेवाले दो प्रभातकालीन विहंगम हैं!......लेकिन वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें इन दोनोंको जिस कश्मल-कर्दमसे मलिन कर दिया गया है, वह जब तक दूर नहीं होता, तब तक मानव-जातिके अगणित अभिशापोंका विनाश नहीं हो सकता!

सावित्री सुन्दरी थी, संगीतनिपुणा थी। यह वेश्या भी सुन्दरी है, संगीतज्ञा भी। सावित्रीने सत्यवानके प्रेमके लिये राज्य-सुखकी

अवहेलना की, वनमें रहकर जीवन व्यतीत करना मंजूर किया; और यह वेश्या कुछ चांदीके टुकड़ोंके लिये अपने सौन्दर्य एवं प्रतिभाका बलिदान कर रही है। सावित्री स्त्री-जातिके लिये आदर्श है; उसे पाना साधारण स्त्रियोंके लिये दुष्कर है। किन्तु उसने जो कुछ किया वह स्वेच्छासे और यह वेश्या जो कुछ कर रही है, अनिच्छासे कर रही है।

लोग कहेंगे—"तो इस वेश्याको विवश कौन कर रहा है? यह अपने इच्छानुकूल कोई काम क्यों नहीं करती? क्या अन्य गरीब स्त्रियां मिहनत-मजदूरी करके जीविका उपार्जन करती नहीं हैं?"...हां, अन्य स्त्रियां परिश्रम करके—मिहनत-मजदूरी करके रोटीके लिये दो टुकड़े कमा लेती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं!...... लेकिन यह रूप-गुणवती युवती ऐसा क्यों करे, जब कि इससे कम सुन्दरी और सर्वथा मूर्ख स्त्रियां महलोंमें निवास करती हैं और मोटरोंपर सैर करती है? कौन-सा ऐसा अभिशाप इसके यौवन-वृन्तपर पड़ गया है,जो इसकी सौन्दर्य-कलिका मलयानिलके चञ्चल स्पर्शसे प्रकम्पित न होकर निदाघके तप्त वातासमें अपने परिमलका उत्सर्ग करे?

अब वह युग सदैवके लिये बीत गया, जब कि निपीड़ित व्यक्ति अपने दुःखोंका कारण अपने पूर्व जन्मके पापोंको समझते थे। वर्तमान युगके दार्शनिकोंने—विंशशताब्दीके गम्भीर विचारकोंने बुद्धिवादके प्रशस्त मार्ग पर चलकर जो जो भविष्य वाणियां की हैं, उनमें एक यह भी है कि या तो मानव-जाति अपनी वर्तमान

सामाजिक व्यवस्थामें परिवर्तन करे या उस दिनकी प्रतीक्षा करे, जब सृष्टिके संचालकके तृतीय नेत्रसे निकली हुई कोप-ज्वाला इस लघु ग्रहके अस्थि-मांसनिर्मित प्राणियोंके अस्तित्वको नष्ट करना आरम्भ कर देगी !

समाज-विप्लव की ओर

समाजवादकी स्थापनाके लिये विप्लवके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही ! संसारके निपीड़ित तरुणो ! अहर्निश अपनी गवेषणा-शालामें मानवी सभ्यताकी उन्नतिके लिये सतत प्रयत्न करके भी सताये जानेवाले वैज्ञानिकों ! हृदयकी एक-एक झंकृति—एक-एक स्पन्दनको शाब्दिक परिधान पहनाकर साहित्यकी श्री-बृद्धि करके भी अपमानित किये जानेवाले साहित्यिको ! अपने रात-दिनके परिश्रमसे सभ्यताके पथको प्रशस्त करनेवाले वीरो ! ऐक्य-सूत्रमें आबद्ध हो जाओ और दुनियांकी उस महफिलमें आज लगा दो, जिसमें प्रवेश करनेका तुम्हें अधिकार नहीं है ।

मैं नदीके तटपर बठा हुआ था। अस्त होते हुए दिनकरकी अन्तिम किरणोंसे विचुम्बित बादलोंको देख-देखकर अपनी कोमल क्रान्त भावनाओंको जगानेका प्रयास कर रहा था!

चारों ओर शान्तिका साम्राज्य था। नगरके खर रवसे दूर उस नदीके तटपर एक स्वर्गिक सौन्दर्य राशि-राशि आकर्षण बिखेर रहा था! दिन भर नगरकी हलचलमें रहनेके बाद प्राणोंको वह प्राकृतिक श्री-सुषमा बहुत ही प्रिय लग रही थी। रह-रहकर मित्रवर "अञ्चल" की निम्नलिखित पंक्तियां स्मृति-लोकमें उदित होकर प्राणोंको मदिराकुल किये देती थीं:—

ज्यों संन्ध्यामें बाल विहग, प्रतिपल नीड़ाकुल होते!
वैसे ही तुम बिन ये मेरे, प्राण तृषातुर रोते!!

धीरे-धीरे प्रकाशके स्थानमें अन्धकारकी मोहन-माया प्रसृत होती जा रही थी। सारा संसार एक प्रकारके विचित्र रहस्या-वरणमें खोता हुआ सा प्रतिभात हो रहा था!

न जाने मैं वहां बैठकर कितनी देरतक अपने स्वप्नोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ा देखता रहता, यदि मेरे दो-चार मित्र वहां न आ पहुंचते!

उन लोगोंके आगननसे पहले तो अपनी सुमधुर नीरवतामें व्याघात पहुंचता देखकर मुझे कुछ दुःख सा हुआ, लेकिन फिर

उनके हास्यालापने उस दुःखपर सुखका झीना आवरण डाल दिया।

"यहां क्या कर रहे हो ?" मेरे मित्रोंमें से एकने पूछा।

"यों ही दिल बहला रहा हूं !" मैंने मुसकरा कर कहा !

कतिपय क्षणों तक विनोद-वार्त्ता होती रही, किन्तु उसके बाद मेरे एक मित्रने कहा—'अब चलना चाहिये ! कल परीक्षा है। बहुत सी चीजें याद करनी हैं ! सचमुच यार ! जब परीक्षा आती है तो मौत जिन्दगीसे भी ज्यादा अच्छी मालूम होने लगती है।'

"तो गोया तुम्हारी निगाहमें जिन्दगी भी एक अच्छी चीज है। मुझे तो यह बिल्कुल वाहियात,—बिल्कुल अर्थहीन मालूम होती है ! आखिर इसमें है क्या ? खाओ, पिओ और मर जाओ। तकलीफों और चिन्ताओंके सिवा और है क्या हमलोगोंकी जिन्दगीमें !"

"मगर यार, चाहे जो हो। जिन्दगी कोई नफरत करने लायक चीज तो नहीं है।"

"नफरत करने लायक चीज नहीं है, तो प्यार करने लायक भी नहीं है। आखिर तुम अपनी ही ओर देखो। बी० ए० पास करके इतने दिनोंसे बेकार बैठे हो ! जगह-जगह खुशामद करते फिरते हो, फिर भी नौकरी नहीं मिलती। और अगर नौकरी मिल ही गयी तो क्या हुआ ? दिन-रात सिर झुका कर आफिसमें पिसते रहोगे; तब जाकर कहीं महीने भरमें ३०-३५ रुपये मिलेंगे। उनसे कपड़े पहन लेने और पेट भर लेनेके सिवा तुम दुनियांमें और क्या कर सकते हो ?"

"फिर तुम मर क्यों नहीं जाते ?"

"इसलिये कि जिन्दगीकी ही तरह मौतसे भी घृणा करता हूं !"

"तुम्हें प्रेम किससे है ?"

"घृणा से।"

कुछ देरके लिये सब चुप हो गये। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सबोंके दिलमें उथल-पुथल मच गयी हो। कुछ क्षणोंके उपरान्त एक सुन्दर सुकुमार किशोरने कहाः—"यार, प्रेम तो मुझे भी केवल दो ही चीजोंसे है। एक तो अपनेसे और एक संगीत से। संगीत भी क्या ही मजेकी चीज है।"

"लेकिन वह मजेकी चीज तब बिल्कुल बेमजा हो जायगी...।"

"अच्छा,अब तुम अपनी फिलासफी रहने दो। कोई अच्छी सी चीज सुनाओ दोस्त।" उस संगीत प्रेमी किशोरको इशारा करते हुए उसने कहा।

"इस समय तो भाई, मैं गानेमें असमर्थ हूं। समय भी हो गया है। मुझे ट्यूशन करने जाना है। देर हो जायगी तो फिर बड़ी कठिनाईमें पड़ जाऊंगा।"

"चलो, मैं भी चलता हूं। देर होनेसे पिताजी खफा हो जायेंगे। परीक्षाका भूत भी सरपर सवार है।"

सब चलनेकी तैयारियां करने लगे। मुझसे उनलोगोंने अनुरोध किया, लेकिन मैंने नम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा—"मुझे यहांकी नीरवता बड़ी प्यारी लगती है। मैं कुछ देर यहीं रहूंगा!"

सब चले गये; केवल........मेरे साथ रह गया।

उसके पास एक बाँसुरी थी; उसे वह बजाने लगा। रजनीके आरम्भिक प्रहरोंमें नदीके तटपर उसकी बाँसुरी प्राणोंको मदिराकुल करने लगी। मुझे अपने उन दोस्तोंकी ग्लानि, नैराश्य, जीवनके प्रति विरक्तिकी भावनाएँ रह-रहकर याद हो आने लगीं !......कहां तो वह नीरव सरिता-तट, वह सुमधुर वंशी-ध्वनियां, आकाशमें स्मित विखेरते हुए नक्षत्र-कुमार और कहां वे उदास,खिन्न, मानव ! ......मानव-जीवनमें भी ऐसा ही आकर्षण,—ऐसी ही सुन्दरता क्यों नहीं है ?

मेरे उन मित्रोंमें किसीके भी दिलमें उत्साह नहीं था; यौवन-सुलभ पराक्रमसे वे रहित थे ! उनके जीवनमें कोई महत्त्वाकांक्षा,—कोई आकर्षण,—कोई रस नहीं था ! केवल एक अन्ध-प्रेरणाके वशीभूत होकर वे जीवन-पथपर चले जा रहे हैं।......लेकिन क्यों उनके जीवनमें आकर्षण नहीं है ? सौंदर्य और प्रेम उनके जीवन से क्यों एक प्रकारसे निर्वासितसे हो गये हैं ?......उनके जीवनमें इतना राशि-राशि नैराश्य,—इतनी असुन्दरता कहांसे आ गयी ? क्यों इतना दुःख—इतना अभिशाप-भार उनके जीवनको विमलिन बनाये हुए है ?

मैं तरह-तरहकी कल्पना-जल्पना कर रहा था। एकाएक मेरे मित्रने बाँसुरी बन्द करके कहा—'क्या सोचने लगे ?'

'यही कि आखिर आज मानव-जीवनमें इतना अपरिसीम हाहाकार क्यों सन्निविष्ट हो गया ? कहांसे नैराश्य और चिन्ताकी कृष्ण परियां आ-आ कर हृदय-प्राङ्गणमें नृत्य करने लगती है ?'

भाई "हमारा जीवन अभिशाप-भारानत क्यों न हो! जीवनमें सुख और उल्लास तब मालूम होता है, जब हमारी साधारण आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं। हमें पुष्टिकर भोजन और अन्य सुविधाएं उपलब्ध हो जाती हैं। यहां तो रातदिन चित्तमें चिन्ताएं उमड़ती घुमड़ती रहती हैं! इसके अलावा कभी-कभी ईर्ष्याकी वह्निसे भी हृदय जलने लगता है!......को देखो, क्या चिन्ता है उसे? यदि वह आइ० ए० में फेल भी हो जायगा तो उसे कोई दुःख नहीं होगा। धनी पिताका लड़का है। मजेमें रहता है। मोटरोंमें घूमता है। इच्छा होगी तो विलायत भी चला जायगा। अयोग्य एवं निर्बुद्धि होनेपर भी उसे अच्छी तनख्वाह पर नौकरी मिल जायगी। लेकिन हमलोगोंको कौन पूछता है!......को ही देखो। युनिवर्सिटीमें फर्स्ट हुआ था। मगर आज नौकरी नहीं मिल रही है। अब तुम्हीं कहो, ऐसी हालतमें किस तरह यौवन-सुलभ चापल्य एवं हास-लासकी रक्षा की जा सकती है?......हम जब भूखों मर रहे हैं तो क्या अधिकार है उन लोगोंको मोटरोंपर चढ़कर सैर करनेका,—विशाल प्रासादोंमें रहनेका। उनमें ऐसी कोई विशेषता भी तो नहीं है! बल्कि सच पूछो तो वे हमलोगोंसे ज्यादा अयोग्य हैं!"

इसके बाद कुछ देर तक हमलोग बैठे रहे; वह अपनी बांसुरी बजाने लगा!

(२)

...जब हमलोगोंकी साधारण आवश्यकताएं भी पूर्ण नहीं हो पातीं, तो क्या अधिकार है उन लोगोंको मोटरोंपर चढ़कर सैर

करनेका,—विशाल प्रासादोंमें रहनेका !......ये शब्द रह-रह कर मेरे अन्तरतमको आलोड़ित-विलोड़ित करने लगे।...सचमुच, क्या अधिकार है उनलोगोंको इतने-इतने बुभुक्षित और निराश्रित व्यक्तियोंके रहते हुए भी समस्त सुविधाओंका उपभोग करनेका ! समाजको उनसे कोई विशेष लाभ भी तो नहीं है ! जिनके अथक प्रयत्नोंके द्वारा सामाजिक उन्नति होती है,—जो अपने सुमहान् अवदानोंसे मानवी सभ्यताकी अग्रगतिमें सहायता पहुंचाते हैं, उन्हें तो वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें अत्यन्त दुःख क्लेशमय जीवन व्यतीत करना होता है और जो समाजकी भलाईके लिये कुछ करना तो दूर रहा, उलटे उसे हानि पहुंचाते हैं, वे समस्त सुख-साधनोंके अधिकारी बने हुए हैं ! प्राकृतिक साधनोंपर किसी व्यक्ति विशेषका अधिकार सर्वथा अन्याय एवं अविचारितासे पूर्ण है। बीसवीं शताब्दीको अपनी साभ्यतिक उन्नतिपर अभिमान है, किन्तु आगे आनेवाली संतति बीसवीं शताब्दीके सभ्यताभिमानी मानवोंकी मूर्खतापर हंसेगी !

सचमुच यह देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे अबतक मानवजाति ऐसी कुत्सित एवं घृणित सामाजिक व्यवस्थाको अपनाये रही ! इतनी निस्सार एवं अर्थहीन सामाजिक व्यवस्थाका विनाशसाधन अबतक क्यों नहीं हो गया, सचमुच यह आश्चर्यका विषय है ! इसमें तो कोई सन्देह है ही नहीं कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की हानियां मनीषी बिचारकोंको बहुत पहले ही ज्ञात हो गयी थी। रोम और ग्रीसके कई दार्शनिकोंकी पुस्तकोंको देखनेसे

यह स्पष्ट परिज्ञात हो जाता है कि उनलोगोंके हृदयमें भी आदर्श सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापनाके विचार आन्दोलन मचाया करते थे

इस पूंजीवादपर टिकी हुई कुत्सित सामाजिक व्यवस्थाका सत्यानाश करके नूतन हितकर सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापनाके विचार विगत शताब्दियोंके अनेकानेक व्यक्तियोंके मस्तिष्कमें उत्पन्न हुए और उन विचारोंने परिमार्जित एवं संस्कृत होकर ग्रन्थोंका रूप ग्रहण किया। उन ग्रन्थोंने यूरोपकी जनताको आन्दोलित कर दिया। अनेकानेक प्रतिभाशाली व्यक्ति इस ओर प्रवृत्त होने लगे! लोगोंकी आंखें खुल गयीं। स्थान-स्थानपर क्रान्तिकारी आन्दोलन होने लगे। अनेकानेक युवकोंको आजन्म कारावासका दण्ड—भोग करना पड़ा; कितनोंको फांसीके तख्तोंपर झूलना पड़ा।

संसारके सभी मनीषी यह अच्छी तरह समझ गये कि संसारका वर्तमान रूप अधिक दिनों तक नहीं रह सकता। क्षुद्रातिक्षुद्र और महान्से महान् सभी चीजें परिवर्तन-शील हैं। किसी चीजका भी रूप सदैव एक-सा नहीं रहता।......लेकिन यह परिवर्तन अन्धाधुन्ध या अकस्मात् नहीं होता। एक विशिष्ट प्रेरक शक्ति इस विश्वकी समस्त चीजोंमें परिवर्तन कर रही है। स्थूल और सूक्ष्म सब परिवर्तन-शील हैं। वर्तमान मानव समाज भी अब इसी परिवर्तनका शिकार होनेवाला है। असन्तोषकी महावह्नि सर्वत्र प्रज्वलित हो उठी है। संसारके समस्त तरुण आज महाक्रान्तिका आह्वान करनेको बद्धपरिकर हो चले हैं।

मानव-जाति और मानव-सभ्यताके हितैषी सभी मनीषी आज एक स्वरसे यह कह रहे हैं कि क्रान्तिके अतिरिक्त समाजके वर्तमान दूषणोंको दूर करनेका अन्य कोई उपाय नहीं। समाजमें परिवर्तन किये बिना वर्तमान अशान्ति और वर्तमान हाहाकार दूर नहीं किया जा सकता। मानव—समाज इस समय घातक रुग्णावस्थामें है। यदि दवा न की जायगी, तो सम्भव है, रोग बहुत बढ़ जाय। जिस प्रकार व्यक्तिका जन्म और मरण होता है, उसी प्रकार जातिका भी जन्म और मरण होता है। जिस प्रकार व्यक्ति रोगाक्रान्त होता है, उसी प्रकार समष्टिके जीवनमें भी रोगका सन्निवेश होता है। साभ्यतिक उन्नति और अवनतिके इतिहासका अध्ययन करनेवाले यह अच्छी तरह जानते हैं कि अनेकानेक सभ्यताएं रोगा-क्रान्त होकर विनष्ट हो गयी हैं। उनका अस्तित्व विनाशके निविड़ अन्धकारमें विलुप्त हो गया है। यूनान, मिश्र, [illegible] आज कहाँ है? संस्कृति एवं वैभवके मदपर इतराने वाला ट्रायनगर आज कहां है?

वर्तमान मानवी—सभ्यता भी रोगाक्रान्त है। इस रोगके लक्षण सर्वत्र परिलक्षित होते हैं। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं, जहां अशान्ति और हाहारव न दृष्टिगोचर होता हो। मानवी सभ्यताका आकाश आज सघन श्याम घन-मालाओंसे आच्छन्न होगया है। क्रान्ति ही वर्तमान रुग्णावस्थाको दूर करनेमें समर्थ हो सकती है। शरीरमें विषाक्त फोड़ेका ओपरेशन होते समय रोगीको कितनी वेदना मालूम [illegible]ेती है, वह चीख उठता है। किन्तु जब उसका शरीर रोग-

रहित हो जाता है, तो उसे कितनी स्फूर्त्ति मालूम होती है—कितना उल्लास उसके प्राणोंमें सन्निविष्ट हो जाता है। ठीक यही हालत मानव-समाजकी है। पूंजीवाद और साम्राज्यवादके विषाक्त फोड़ेका आपरेशन क्रान्तिसे ही हो सकता है। आपरेशन होते वक्त चारों ओर चीख-चिल्लाहट अवश्य मचेगी, किन्तु जब यह फोड़ा दूर हो जायगा;—जब पूंजीवाद और साम्राज्यवाद विनाशके निबिड़ तिमिरमें विलुप्त हो जायंगे, उस समय अभूतपूर्व सुख और शान्ति चारों ओर छा जायगी। उसी समय कविकी निम्नलिखित पंक्तियोंको गानेमें वास्तविक आनन्द आयेगा,—

'सुन्दर-सुन्दर जग—जीवन !'

(३)

चाहे कितना ही परिश्रम क्यों न किया जाय, चाहे कितने ही उपायोंसे काम क्यों न लिया जाय; इतना तो निश्चित है कि वर्तमान अशान्तिका एकमात्र उपचार है,—महाक्रान्ति !

क्रान्तिके लिये हम क्रान्ति नहीं करना चाहते। दवाके लिये कोई भी व्यक्ति दवाका सेवन नहीं करता। हां, कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी दवाका अधिक कालीन सेवन 'दवाके लिए दवाका सेवन' की स्थिति ले आता है, किन्तु यह तो स्वयं एक रोग है। क्रान्तिक लेकर भी कई स्थानोंमें कई व्यक्ति इस रोगसे अभिभूत हो गये हैं। इतिहासमें ऐसी घटनाओंकी कमी नहीं ! लेकिन जिस प्रकार दवाका उद्देश्य रोगको दूर करना मात्र है, उसी प्रकार क्रान्तिका उद्देश्य भी सामाजिक दुरवस्थाका नाश करना है।

समाजवादके नामसे ही जिन्हें चिढ़ है और जो परिस्थितियोंकी कृपासे पूंजीपति हो गये हैं या अच्छे वेतन पर पूंजीपतियोंके यहां नौकर हैं, वे अक्सर यह कहा करते हैं कि समाजवादी और कुछ नहीं चाहते. वे तो केवल विप्लवकी सृष्टि करना चाहते हैं ! विद्रोह और विप्लव करना ही उनका एकमात्र काम है ! किन्तु उनका यह कथन कितना भ्रान्त और कितना विद्वेषपूर्ण है, यह बतलानेकी अब अधिक आवश्यकता नहीं रही। इतिहासका अध्ययन करनेवाले सभी व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते हैं कि विप्लव एक पक्षके द्वारा ही सम्भूत नहीं होता। कोई व्यक्ति या कोई जन-समूह अकेले ही विद्रोह नहीं करता। विद्रोहकी सृष्टि तभी होती है जब एक पक्ष विद्रोही हो और एक पक्ष ऐसा हो, जिसके प्रति विद्रोह किया जाय ! क्रान्तिमें दोनों ही पक्षोंका हाथ रहता है। विभेद केवल इतना ही है कि एक पक्ष सदिच्छासे अनुप्राणित होकर नवीनताका आह्वान करनेके लिये विद्रोहकी सृष्टि करता है और दूसरा पक्ष कुत्सित एवं घृणित स्वार्थपूर्ण हिंस्र वासनाओंसे अनुप्रेरित होकर हतप्रभ पुरातनताकी रक्षा करनेके लिये विद्रोह करता है ! लेकिन साधारण दृष्टिसे देखनेपर पहला ही पक्ष विद्रोहीके नामसे अभिहित किया जाता है !

समाजवादियोंके उद्देश्यकी पूर्त्तिमें,—मानवताके समस्त कश्मल विदूरित करके नव्य एवं उत्कृष्ट सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापनाके पावन उद्देश्यमें जो अड़चनें उपस्थित होती हैं, उन्हें दूर करना उनका कर्त्तव्य हो जाता है ! समाजवादी यह चाहते हैं कि एक ऐसी

सामाजिक व्यवस्था हो, जिसमें प्रत्येक मनुष्य सुखपूर्वक रह सके, अपनी योग्यताका सुविधापूर्वक विकास करते हुए जीवन-यापन कर सके। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें यह संभव नहीं है। अतएव जब समाजवादी अपनी पथ-बाधाओंको विदलित करते हैं, तो क्रान्तिकी सृष्टि स्वयमेव हो जाती है! समाजवादी सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापनाके पहले वर्तमान समाजमें अनेकानेक परिवर्तन अपरिहार्य्य हैं! और परिवर्तनकारियोंके पथमें जो बाधाएं आती हैं, उन्हें विनष्ट करते हुए आगे बढ़नेका नाम ही क्रान्ति है! सुप्रसिद्ध समाजवादी मेरिस तोरेजने 'विप्लव' के बारेमें लिखा है:—"विरुद्ध सामाजिक शक्तिके अपरिहार्य्य प्रभावके द्वारा ही समाजमें परिवर्तन होता है। मानव समाजके क्रम-विकासकी पर्यालोचना करके विज्ञानने यह आविष्कार किया है"

"समाजकी उत्पादन-प्रणालीका विस्तार एवं परिपुष्टिके मध्य एक ऐसी अवस्था आ उपस्थित होती है जब उसकी विभिन्न धाराओंके बीच विरोध उपस्थित हो जाता है अर्थात् सम्पत्तिके ऊपर निर्भरशील नाना स्तरोंके मध्यमें मनुष्यका चिराचरित सम्बन्ध स्वविरोधी हो उठता है। धन और पण्य उत्पादनकारी शक्तियोंकी परिपुष्टि और रूपान्तरके फलसे पूर्वके अङ्गाङ्गी योगका सम्बन्ध बन्धन-शृङ्खल हो उठता है। तभी समाज-विप्लवका युग आ उपस्थित होता है।"

मेरिस तोरेजकी उपरिलिखित पंक्तियां बहुत ही सारगर्भित हैं। पूर्ण अंशोंमें इन्हें सत्य नहीं कहा जा सकता, किन्तु इसमें कोई

सन्देह नहीं कि समाज-विप्लवके एक प्रमुख कारणपर इन्होंने प्रकाश डाला है !

++ ++ ++ ++

विप्लव !

बस, समाजवादकी स्थापनाके लिये विप्लवके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं। संसारके निपीड़ित तरुणो ! अहर्निश अपनी गवेषणा-शालामें मानवी सभ्यताके लिये सतत प्रयत्न करके भी सताये जानेवाले वैज्ञानिको ! हृदयकी एक-एक झंकृति—एक-एक स्पन्दनको शाब्दिक परिधान पहनाकर साहित्यकी श्री-वृद्धि करके भी अपमानित किये जानेवाले साहित्यको ! अपने रात दिनके परिश्रमसे सभ्यताके पथको प्रशस्त करनेवाले वीरो ! ऐक्य-सूत्रमें आबद्ध हो जाओ और दुनियांकी उस महफिलमें आग लगा दो, जिसमें प्रवेश करनेका तुम्हें अधिकार नहीं है। उलट दो मैखानेके उस जामको, जिसे पी-पी कर दुनियांके धनपति मस्त हो रहे हैं !

तरुण तपस्वियोंकी-

—महाक्रान्ति !

ध्येयकी प्राप्ति महाक्रान्तिसे करनी होगी, धर्म-विशेषके प्रचारसे नहीं ! सृष्टिके संचालकको अपने अग्नि-संगीतोंसे रिझाना पड़ेगा— प्रार्थनाओंसे नहीं ! मानव-जातिके समक्ष बज्र- निर्घोष करना पड़ेगा—साधारण उपदेशोंसे काम नहीं चलेगा !

आकाशके सुनील मार्गमें अगणित तारक-पथिक मुसकरा रहे थे। कितने ही श्वेत बादलोंके छोटे छोटे समूह चन्द्रमाके आलिङ्गनका प्रयास कर रहे थे।

नगरके कोलाहलसे परिश्रान्त होकर मैं पुरुलिया-रोडमें टहल रहा था। रांचीमें जिन स्थानोंपर प्रकृति देवीकी विशेष कृपा हुई है, उनमें पुरुलिया-रोड प्रमुख है।

मार्गके दक्षिण एवं बाम पार्श्वमें स्थित नाना प्रकारके मनोरम विटपी-दलोंकी सुषमापर विमुग्ध होता हुआ मैं कैथोलिक चर्चके पास पहुंचा। वहां कई सौ स्त्री-पुरुष एकत्र होकर शान्तिपूर्वक व्याख्याताकी बातोंको सुन रहे थे। अपनी स्वाभाविक उत्सुकतासे प्रेरित होकर मैं भी वहां गया; लेकिन कोई विशेष आकर्षण न पाकर वाटिकामें ही टहलने लगा।

"व्याख्याताके शब्द आपतक स्पष्ट रूपमें नहीं पहुंचते होंगे"—पारस्परिक अभिवादनके उपरान्त एक सौम्यमूर्ति पादरीने कहा!

"हां बात कुछ ऐसी है। हिन्दीके शब्दोंका उच्चारण भी तो वे ठीक-ठीक नहीं कर पाते। आया तो था उनका व्याख्यान सुनने; लेकिन असमर्थ होकर वाटिकामें ही टहलने लगा।......और क्या इन नक्षत्रोंका, इस आकर्षक चन्द्रमाका मौन भाषण उस भाषणसे

है अधिक प्रभावशाली नहीं है ?"—मैंने मुसकराते हुए कहा।

उसके बाद तो काफी बातें होने लगीं। सोक्रेटीज, शोपेनहर, डार्विन इत्यादिके सिद्धान्तोंपर तर्क-वितर्क होने लगा। बातें हो रही थीं अंग्रेजीमें; लेकिन बीच-बीचमें उस यूरोपियन सन्यासीके मुखसे निकले हुए संस्कृत शब्द मुझे विस्मित कर रहे थे।

"चाहे जो हो; डार्विनने मानव-जातिके उद्भवके अन्धकाराच्छन्न इतिहासपर प्रकाशकी जो किरणें निक्षिप्त की हैं, उसके लिये मनीषी समाजमें सदैव उसका नाम आदर और श्रद्धाके साथ लिया जायगा" —प्रसंगवश मैंने कहा।

"डार्विनके सिद्धान्तपर अब समझदार व्यक्ति विश्वास नहीं करते। विद्वानोंने उसका खण्डन कर दिया है"—गोरे संन्यासीने कहा।

करीब आधे घण्टे तक बातें होनेके बाद उन्होंने कहा—"आप यहीं ठहरें; मैं तुरन्त आता हूं—चर्चमें आवश्यक काम है। पांच मिनट प्रतीक्षा करें।"

मैं उसके बातचीत करनेके परिमार्जित ढङ्गसे एवं फिलासफीके प्रति उसके प्रेमसे—जो बहुत कम कैथोलिक प्रचारकोंमें पाया जाता है—काभी प्रभावित हुआ और उसे सन्मान की दृष्टिसे देखने लगा था। फलतः मैंने कहा—"आप आयें; आपसे बातें करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

मैं समीपस्थ वृक्षोंकी हरीतिमाका नीरोक्षण करके अपना मन बहलाने लगा। पांच मिनट बीतते-न-बीतते वह योरोपियन संन्यासी

तेजीके साथ मेरे पास आ पहुंचा और बोला—"बड़ी कृपा हो, यदि आप मेरे निवास-स्थान पर चलें। मैं आपको कुछ किताबें दूंगा।"

"चलिये।"

और हम दोनों चांदनीसे धुले हुए मकानों और पेड़-पौधोंको देखकर नेत्र परितृप्त करते हुए सड़क पर चलने लगे।

"भारतीय दर्शनका आप अध्ययन करें। हमारा 'अद्वैतवाद' हमारे महर्षियोंके गम्भीर चिन्तन—घोर तपस्याका परिणाम है।" और यह कहते हुए मैंने सोचा था कि यह यूरोपियन संन्यासी भी अपने अन्य सहकर्मियोंकी तरह ही भारतीय फिलासफीसे अपरिचित ही होगा, यद्यपि कैथोलिक चर्चकी सुविशाल क्राइस्टकी मूर्तिके पास वाटिकामें बातें करते हुए उसके मुखसे संस्कृत शब्दोंको सुनकर मैं आश्चर्यान्वित हो चुका था।

मेरे ऐसा कहनेके बाद तो उसने शङ्कर, रामानुज इत्यादि अनेकानेक भारतीय दार्शनिकोंके सिद्धान्तोंकी विवेचना करनी शुरू कर दी। उसके बोलनेका तरीका आकर्षक और प्रभावशाली था।

कुछ दूर जानेके बाद हमलोगोंने एक छोटेसे मैदानको पार करते हुए एक मकानमें प्रवेश किया। सन्यासीने कमरेका दरवाजा खोल कर रोशनी की और एक कुर्सीपर बैठनेका मुझसे अनुरोध किया।

कमरा बिलकुल साधारण था। दीवाल पर कैथोलिक धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ चित्र टंगे हुए थे। साधारण-सी मेजपर कई किताबें रखी हुई थीं। कमरेमें केवल दो कुर्सियां थीं, और दोनों ही बिलकुल साधारण।

कुछ देर बातें करनेके बाद उसने कहा—"आप इन दोनों किताबोंको ले जाइये और पढ़िये। आप रहस्यवादी हैं, अतः सेंट टेरेसाका यह जीवन आपको रुचिकर प्रतीत होगा। कृपाकर मुझसे फिर मुलाकात कीजियेगा; अपनी लिखी हुई किताब आपको दूंगा, उसमें मैंने कैथोलिसिज्मके सम्बन्धमें किये जानेवाले समस्त आक्षेपोंका उत्तर दिया है।"

कुछ दिनोंके बाद मैं उसके यहां फिर गया। मुझे उस यूरोपियन सन्यासीसे कुछ स्नेह-सा हो गया था।

बड़े ही स्नेहके साथ उसने मुझसे बातें करनी शुरू की। बड़ी देरतक सृष्टि, ईश्वरऔर मानवके सम्बन्धमें तर्क होता रहा। उसके बाद उसने मुझे अपनी लिखी हुई एक किताब देते हुए कहा—"इसे आप पढ़ें। जिन स्थलोंपर आपको सन्देह हो, उसपर तर्क करनेके लिये आप सहर्ष आमन्त्रित हैं।"

तर्ककी ओर उस श्रद्धालु सन्यासीकी अधिक प्रवृत्ति देखकर मैंने कहा—"लेकिन तर्कसे तो कोई फायदा नहीं, आध्यात्मिक जगतमें तो साधना ही सब कुछ है।"

"लेकिन तर्कसे ही तो हम साधनाका स्वरूप निश्चित कर सकते हैं"—उसने मुसकराते हुए जवाब दिया।

उसके बाद तो कई बार उससे मुलाकात हुई और कई बार दार्शनिक एवं राजनीतिक विषयों पर बातें हुईं। सम्मानकी दृष्टिसे तो मैं उसे परिचयके प्रथम दिनसे ही देखने लगा था, लेकिन जब मैंने लेटिन, ग्रीक, फ्रेञ्च आदि कई भाषाओंके विद्वान

उस सन्यासीको छोटे-छोटे कोल और उरांव बालकोंके साथ स्नेह-पूर्ण व्यवहार करते देखा, उनके साथ बातें करनेमें—उनके दुख दर्द को दूर करनेमें दत्तचित्त होते हुए देखा, तो मेरा हृदय श्रद्धासे और भी भर उठा !

++　　++　　++　　++

बादमें मालूम हुआ कि वह यूरोपियन सन्यासी बेलजियमका राजकुमार है !

(२)

इतना त्याग—आदर्शको प्राप्त करनेके लिये इतनी कठोर तपस्या—अपने 'आराध्य' के आदेशोंका प्रचार करनेके लिये इतना कठोर संयम, आखिर इस राजकुमारमें कहांसे आ गया ? किस अज्ञात शक्तिने इसके प्राणोंमें इतनी-इतनी कर्मोन्मादना भर दी कि यह अपने देशको—अपने घनिष्ट हितैषी मित्रोंको छोड़कर छोटा-नागपुरके जङ्गली निवासियोंमें अपने जीवनकी घड़ियोंको व्यतीत कर रहा है ?

आजसे शताब्दियों पहले भारतवर्षमें बौद्ध सन्यासी भी इससे कहीं अधिक त्याग—आदर्शको प्राप्त करनेके लिये इससे कहीं अधिक उन्मादना लेकर विदेशोंमें जाते थे और विधर्मियोंमें 'सत्य धर्म' का प्रचार करते थे, सभी निदारुण उत्पीड़नोंको शान्तिपूर्वक सहन करते थे ! प्रेम और अहिंसाके सन्देशको लेकर वे आततायियोंके

पास जाते थे और ज्ञानालोकसे उनके तिमिराच्छन्न हृदयको प्रकाशित कर देते थे !

संसारके अनेक देशोंमें ऐसे-ऐसे अनेकानेक महाप्राण व्यक्तियोंका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने अपने आदर्शके पीछे जीवनका सारा सुख, समस्त ऐश्वर्य, भोग-विलासको समस्त सुविधाएं कुर्बान कर दीं और दर-दर भटकते फिरे ! उन्होंने अपने मार्गके पर्वतकाय प्रतिरोधोंकी तनिक भी परवाह नहीं की। हिंस्र जन्तुओंसे घिरे हुए निविड़ अन्धकारमय जीवन पथपर चलते हुए भी उनके मुखकी श्री अम्लान रही !- ध्येय अटल रहा ! मूर्ख मानव-समाजने उनको निपीड़ित करनेका प्रयास किया, लेकिन वे अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते ही गये।

'सत्य' के प्रति जिनके हृदयमें प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है, जो अपने सुख वैभवसे अपने 'सिद्धान्त' को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं, वे संसारकी निर्भर्त्सनाओंकी तनिक भी परवाह नहीं करते। लोग उनपर कुसुमोंकी वर्षा करें, या धूल फेंकें; वे सदैव समचित्त रहकर अपने ध्येयकी ओर बढ़ते ही जाते है। साधारण व्यक्तियोंकी भांति वे इन्द्रिय-संस्पर्शज भोगोंको ही सर्वोत्कृष्ट समझकर—आलिङ्गन, परिरंभणको ही सबसे बढ़कर सुख देनेवाला कृत्य समझकर जीवन--पथपर नहीं चलते। वे ऐसे विलासप्रिय लोगोंसे बहुत ऊपर उठे हुए व्यक्ति होते हैं। दुनियांके नश्वर भोगोंमें उनकी आस्था नहीं रहती ! उनकी आंखें सत्य, शिव और सुन्दरकी ओर लगी रहती हैं। वे स्वप्नोंके द्रष्टा होते हैं और जब वे

अपने स्वप्नोंको कार्य रूपमें परिणित करनेकी दुर्निवार आकांक्षा लेकर कार्य-क्षेत्रमें उतरते हैं तो दुनियांके साधारण मानव उन्हें समझनेमें भूल करके उनकी अवमानना करते हैं—उनका तिरस्कार करतेहैं, उन्हें पागल कहते हैं! दुनियांके बहुत कम ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं, जिनको आरम्भमें 'पागल' की उपाधि न मिली हो!

भिन्न-भिन्न 'पागलों' ने -धुनके दीवानोंने उस अराध्यकी, उस 'सत्य-शिव सुन्दर' की भिन्न-भिन्न रूपमें उपासना की है। किसीने ज्ञानके अर्जनमें अनेक प्रकारकी तकलीफें भोग कर उसको रिझानेका प्रयत्न किया है, तो किसोने शौर्य्यका प्रदर्शन करके। किसीने निपीड़ित मानव-जातिकी दुर्दशाको दूर करनेकी चेष्टाओंमें निरत होकर उस 'दिलवर' के आदेशका पालन किया है, तो किसीने अपनी लेखनीके द्वारा अग्नि-स्फुलिङ्गोंकी वर्षा करके। कुछ अभागे तो यह भी नहीं समझ सके कि उनको प्रेरणा कहांसे मिली है, कहांसे उनको राशि-राशि कर्मोन्मादना प्राप्त हुई है! अपनी ही कृतियोंपर चकित होते हुए वे जीवन-पथपर चलते चले!

राणा प्रतापको कौन सी कमी थी? भोग-विलासके कौनसे साधन उन्हें उपलब्ध नहीं हो सकते थे? राजपूतानेमें कौन ऐसा था, जो उनके पराक्रमके सामने नतमस्तक नहीं होता।......लेकिन भोग-विलासको ही सब कुछ समझनेवाले मानवोंसे वे बहुत ऊपर उठे हुए थे। उनकी 'आत्मा' 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' को चाहती थी, अतः उनका 'मानव' पराधीनताको वरण नहीं कर सका। जहां सत्य है, जहां शिव है, जहां सुन्दर है. वहां परतन्त्रता कहां?

प्रकाशके अभावमें ही अन्धकारका होना सम्भव है। राणानें स्वतन्त्रताके लिये सारे सुख-वैभवोंको तिलांजलि दे दी, बुभुक्षित रहकर जंगलोंमें भटकते फिरे।..........एक नहीं, ऐसे अनेक महाभाग इस धरित्री पर होगये है, जिन्होंने स्वतन्त्रताके लिये संसारके सर्वोत्कृष्ट सुखोंपर लात मार दी—आदर्शकी प्राप्तिके लिये जीवनके सारे सुखोंको कुर्बान कर दिया।

प्राणोंमें एक अजीब हलचल-सी मच्च जाती है। एक विचित्र उन्मादना अन्तस्तलमें परिव्याप्त हो जाती है। एक अद्भुत, किन्तु चिर-मधुर सन्देश, प्राणोंको आलोड़ित करने लगता है। देश और कालके व्यवधानको चीरकर, न जाने कहांसे तो एक आदेश सा आता है और प्राणोंको पागल कर देता है।

यौवनपर्यन्त सुखोपभोग करनेके उपरान्त टालस्टायके प्राणोंमें यही उन्मादना परिव्याप्त हुई थी। प्रिन्स क्रोपाटकिनको इसी सन्देशने साम्राज्यवादके विरुद्ध कर दिया था! मार्टिन लूथरने इसी प्रेरणासे अनुप्राणित होकर प्रचलित अन्ध-विश्वासोंके खिलाफ बगावत कर दी थी। फ्लोरेन्स नाइटिंगेलने आत्माकी इसी पुकारको सुनकर प्रचलित सामाजिक बन्धनोंकी तनिक भी परवाह न करते हुए लाखों घायल सैनिकोंकी सेवा-सुश्रूषाके लिये अपना जीवन—अपना यौवन उत्सर्ग कर दिया था। सुकरातने 'सत्य' के इसी प्रगाढ़ प्रेमके कारण हंसते-हंसते विषका पान कर लिया था और क्राइस्टने सूलीपर चढ़कर भी अपने परम पितासे आततायियोंको क्षमा करनेकी प्रार्थना की!

भारतवर्ष तो आरम्भसे ही आदर्शवादियोंके लिये प्रख्यात रहा है। स्वप्नद्रष्टा जितने यहाँ हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं। रहस्यवादियोंके—दार्शनिकोंके इस गङ्गा-यमुना शोभित देशमें यही कर्मोन्मादना आज अनेकानेक महाप्राण व्यक्तियोंमें उद्वेलित हो रही है। पण्डित जवाहरलाल नेहरूकी कर्मण्यता, महात्मा गांधीकी सत्य-साधना, श्री सुभाषचन्द्र बोसकी अविराम प्रचेष्टाएं—इन सबके मूलमें वही एक महान् शक्ति है, जिसके एक साधारण इङ्गितसे कोटि-कोटि ग्रह नष्ट हो सकते हैं!

(३)

आज पृथ्वीपर ऐसे ही महाप्राण व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। ऐसे ही धुनके दीवानोंकी जरूरत है, जो समस्त प्रतिरोधोंको कुचलते हुए—मान-अपमानकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए समस्त क्षुद्र शक्तियोंको विनष्ट कर दें! संसारके वर्तमान नैराश्य-निशीथमें ऐसे ही तापस तरुणोंकी आवश्यकता है, जो बेलजियमके उस सर्व स्वत्यागी राजकुमारकी भांति निर्लोभी होकर पृथ्वीके निवासियोंकी वर्तमान दुरवस्थाको दूर करनेकी महती आकांक्षासे अनुप्राणित होकर कण्टकाकीर्ण पथपर चल सकें! हर्म्योंके वातायन-पथसे अपनी रूप-चन्द्रिका बिखेरनेवाली कामिनियां जिनके हृदयको विलुब्ध न कर सकें,—कुसुमोंकी सेजको देखकर जो लक्ष्य-च्युत न हो जायं, संसारको ऐसे ही तरुण तपस्वियोंकी आवश्यकता है।

लेकिन ध्येयकी प्राप्ति महाक्रान्तिसे करनी होगी, धर्म-विशेषके प्रचारसे नहीं। सृष्टिके संचालकको अपने अग्नि-सङ्गीतोंसे रिझाना होगा, प्रार्थनाओंसे नहीं। मानव-जातिके समक्ष वज्र-निर्घोष करना पड़ेगा साधारण उपदेशोंसे काम नहीं चलेगा।

समाजवाद स्वप्न-द्रष्टाओंका स्वप्न नहीं है !

(बंधनोंको तोड़कर सभी प्रकारकी विपत्तियोंका सामना करते हुए क्रान्तिका आह्वान करना सबोंका काम नहीं। जिनके मस्तिष्कमें महान् शक्ति होती है, हृदयमें दुर्दन्त बल होता है, प्राणोंमें महाक्रान्तिकी वीणा बजती रहती है, वे ही प्रचलित प्रथाओं का विरोध करके समस्त क्षुद्र भीतियोंके प्रति खड्गहस्त होकर जीवन-पथमें चलनेका साहस कर पाते हैं!)

"...समाजवाद स्वप्न-द्रष्टाओंका एक ऐसा स्वप्न है,जिसका मूल्य वास्तविक संसारमें कुछ भी नहीं। वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था जैसी है, वैसी ही रहेगी। यह सहस्रों वर्षोंसे इसी प्रकार चली आ रही है। धनी और निर्धनका विभेद—हर्म्यवासी और कुटीरवासी का विभेद कदापि विदूरित नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्तिको अपने पूर्व जन्मके कृत्योंका शुभाशुभ परिणाम भोगना ही पड़ता है। ये नवीन समाजवादी—पृथ्वीको स्वर्ग बनानेकी कामना करनेवाले ये पागल स्वप्न-द्रष्टा कदापि सफल नहीं हो सकते। निर्धन व्यक्तिको आजीवन धनीके आदेशोंका अनुवर्त्तन करना ही पड़ेगा, उसकी परिचर्य्यामें—उसके सम्बन्धियोंकी सेवा-सुश्रूषामें निरत रहना ही पड़ेगा। निर्धनता पूर्व जन्मकी दुष्कृतियोंका अवश्यम्भावी परिणाम है। सृष्टिके न्यायी भाग्य—विधाताके नियममें विपर्यय नहीं हो सकता!"

युगोंके कश्मलसे विमलिन भ्रान्त कल्पनाओंको अपने जीवनसे अधिक महत्त्व देनेवाले किसी भी भारतीयके मुखसे आप ऐसी वातें सुन सकते हैं। सभ्यता एवं संस्कृतिके आलोकसे विरहित ग्रामोंमें निवास करके जीवनके अभिशप्त दिवस व्यतीत करनेवाले अशिक्षित ही नहीं; बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी उपरिलिखित वातें कह कर

समाजवादियोंको उन्माद-रोग-ग्रस्त विघोषित करनेमें गर्वका अनुभव करते हैं; इनकी दृष्टिमें वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाका विनाश साधन करके समाजवादकी स्थापना करनेके लिये अहर्निश विकल रहनेवाले व्यक्तियोंका एकमात्र वास्तव्य स्थान पागलखाना होना चाहिये। और समाजवादियोंके प्रति यह जो विरक्ति है—उन्हें स्वप्न-द्रष्टा समझकर उनके प्रति प्रदर्शित की जानेवाली यह जो उदासीनता है, वह केवल पूँजीपतियोंमें ही नहीं, वल्कि उन श्रमिकोंमें भी पायी जाती है, जो अहर्निशके परिश्रमके उपरान्त भी उचित भोजन वस्त्र नहीं प्राप्त कर सकते;—जिनके वच्चे फीसके अभावसे तीक्ष्ण वुद्धि वाले होने पर भी शिक्षासे वञ्चित रहने को मजवूर किये जाते हैं!

अन्धकारको दूरीकृत करके—रजनीके निविड़ तिमिरके भयोत्पादक पटलको चीर करके प्रकाशकी यह जो एक कनक-रश्मि मानव-जातिके जीवन-गगनमें आना चाहती है, उसके प्रति अधिकांश मानव इस प्रकार विरक्त क्यों हैं,इसके जो कई कारण हैं, उनमें सर्व-प्रमुख कारण युगोंका संस्कार है। जो वंदी अपने जीवनका अधिक भाग कारागारकी संकीर्ण एवं दुःखदायी कोठरीमें व्यतीत करता है, वह स्वतन्त्रताके सुखको विस्मृत कर जाता है और कारावद्ध रहनेमें ही उसे सुखानुभूति होती है। विष्ठापर वैठने वाली मक्षिकाको मधुका आस्वादन करानेमें अनेकानेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। सुदीर्घ अभ्यासको तिलाञ्जलि दे कर नवीन मार्ग ग्रहण करना वड़े-वड़े वौद्धिक व्यक्तियोंके लिये भी दुष्कर

हो जाता है। मानव-जातिके अधिकांश सदस्य समाजवादके प्रति जो इस प्रकारका औदासीन्य प्रकट कर रहे है एवं अपनी वर्त्तमान परिस्थितिमें नाना दुःखोंका उपभोग करते हुए भी सन्तुष्ट रहना चाहते हैं, इसका कारण वर्षोंसे चला आनेवाला संस्कार है।

संस्कार-जन्य विमूढ़ताके अतिरिक्त अन्य कई कारण और भी हैं,जिनका उल्लेख करनेसे इस पुस्तकका आयतन अपेक्षाकृत अधिक हो जानेका भय है। बन्धनोंको तोड़कर सभी प्रकारकी विपत्तियोंका सामना करते हुए क्रान्तिका आह्वान करना सबोंका काम नहीं। जिनके मस्तिष्कमें महान शक्ति होती है, हृदयमें दुर्दान्त बल होता है, प्राणोंमें महाक्रान्तिकी बीणा बजती रहती है, वे ही प्रचलित प्रथाओंका विरोध करके—समस्त क्षुद्र काल्पनिक भीतियोंके प्रति खड्गहस्त होकर जीवन-पथमें चलनेका साहस कर पाते हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दीके अनेकानेक विचारशील व्यक्तियोंने अपने ग्रन्थोंके द्वारा विद्वज्जनोंको यह अच्छी तरह बतला दिया है कि वर्तमान अशान्तिका एकमात्र उपचार समाजवादकी स्थापना है और यह तबतक नहीं हो सकता, जबतक कि महाक्रान्ति न हो जाय। कुटीरोंका उपहास करनेवाले गगनचुम्बी हर्म्योंपर क्रान्तिके अग्निस्फुलिंगोंका वर्षण हुए बिना वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाका विनाश-साधन असम्भव है। निर्धनोंका रक्त चोषण करने वाले लक्षाधीश आसानीसे समाजवादकी स्थापना नहीं होने देंगे। किन्तु इतना जान लेनेपर भी पृथिवीके अनेकानेक विद्वान समाजवादका विरोध कर रहे है। उनके इस विरोधमें उनका 'दिल' नहीं, उनकी जेबोंमें

जानेवाली 'स्वर्ण-मुद्राए' बोल रही हैं!—उनका 'मस्तिष्क' नहीं, उनको 'मनीषा' नहीं, उनका 'संकीर्ण स्वार्थ' बोल रहा है।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको अनिवार्य, अपरिहार्य्य एवं अपरिवर्तनशील माननेवाले महानुभाव यदि सच्चे दिलसे ईश्वरपर विश्वास करते है और उसे न्यायी एवं दयालु माननेको भी तैयार हैं, तो उनके सदृश हतभाग्य, हतबुद्धि एवं उद्भ्रान्त प्राणी इस पृथ्वीपर तो क्या, इस विराट विश्वके किसी भी ग्रहमें नहीं मिलेंगे। क्या यह राशि-राशि उत्पीड़न—पैसोंके अभावमें आत्म-घातका प्रयत्न करनेवाले नवयुवकोंका निरोदन दयालु ईश्वरकी कृति हैं? क्या नैराश्य-वाणोंसे बिद्ध मानव-हृदयका ऐसा करुणापूर्ण क्रन्दन ईश्वरकी इच्छाके अनुकूल की गयी सामाजिक व्यवस्थामें श्रुतिगोचर हो सकता है? किसी भी व्यक्तिको, यदि उसे थोड़ी-सी बुद्धि हो और उस बुद्धिसे काम लेनेकी क्षमता हो, तो वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको ईश्वरकी इच्छापर आश्रित समझनेवाले महानुभावोंके विचित्र मस्तिष्कपर दया आ सकती है।

धर्मका वर्त्तमान स्वरूप अहितकर नहीं; हितकर ही सही! मानय-जातिका विकास पशुओंसे नहीं हुआ है; उसके पूर्व पुरुष नन्दन-विपिनमें विहार करनेवाले देवता ही सही! इन सब बातोंके विषयमे मिथ्या विश्वासका पोषण करने हुए जीवन-पथ पर चलनेमें उतनी हानि नहीं; जितनी वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाको अपरिवर्त्तनशील एवं निर्धन और धनीके विभेदको पूर्व जन्मकी दुष्कृतियों अथवा सुकृतियोंका परिणाम माननेमें है। भारतवर्ष दार्शनिकोंका

देश है—इसके लिये यह अन्य देशोंके समक्ष गौरवान्वित हो सकता है; लेकिन अपने ऋषियोंकी प्रबल साधनाके द्वारा समद्भूत ज्ञानका जैसा दुरुपयोग यह देश कर रहा है, उसके लिये इसे लज्जा भी कुछ कम नहीं होनी चाहिये। दार्शनिक चिन्तनासे किसी देशकी शक्तियां विनष्ट नहीं हो सकती हैं। सृष्टिके रहस्योंका उद्घाटन करनेके प्रयासी होकर निर्जन वनस्थलीमें घोर साधना एवं तपस्या करनेवाले महापुरुषोंकी संख्या-वृद्धि किसी जातिके लिये हानिकर नहीं हो सकती!

भारतवर्षकी साम्प्रतिक हीनावस्थाका प्रमुख कारण अकर्मण्यताका एवं परम्परागत कुसंस्कारोंकी आसक्ति है। समयानुकूल परिवर्तनोंका स्वागत न करनेका ही परिणाम आज पराधीनता एवं अन्य प्रकारकी अवनतियोंके रूपमें प्रकट हुआ है!

संसारके महामनीषियोंके स्वरमें विश्वके स्रष्टाकी वाणी प्रकटित हो उठी है कि मानव-जातिकी वर्तमान हीनावस्थाको दूर करनेका एकमात्र उपाय समाजवादकी स्थापना है और समाजवादकी स्थापनाका एकमात्र उपाय है महाक्रान्ति!...........लेकिन सभी प्रकारकी असुविधाओंसे जर्जरित रहते हुए भी—वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें सभी प्रकारसे लाञ्छित एवं अवहेलित जीवन विताते हुए भी उनका हृदय विद्रोही भावनाओसे नहीं भर जाता! - उनके प्राणोंमें बगावतका तूफान नहीं उठ खड़ा होता! अकर्मण्यता और आलस्यका—पशुतुल्य जीवन-यापन करनेका ऐसा उदाहरण अन्यत्र कहां मिल सकता है!...........संसारकी मूल नियामक शक्ति ही

आज विद्रोहात्मक भावनाओंसे अभिभूत होकर अधुनातन मानव-समाजमें भीषण उथल-पुथलकी सृष्टि कर डालनेको मचल उठी है! हमें तो केवल निमित्तमात्र होकर उसकी उद्देश्य-पूर्त्तिमें सहायता पहुंचानी है। ये समस्त पूंजीवादी षड्यन्त्र,—श्रमिकोंके जीवन-रसको चूसने वाले ये समस्त साधन,—मानवी सभ्यताकी अप्रगतिका मार्ग अवरुद्ध करनेवाले ये समस्त कुचक्र,—ज्ञान और विज्ञानके स्थानपर स्वर्ण एवं रजत—मुद्राओंको महत्व प्रदान करनेके ये कौशल संसारकी नियामक शक्तिके द्वारा नष्ट किये जा चुके हैं। ये विशाल हर्म्य,—रत्न-दीपोज्वल गगनचुम्बी हर्म्य उलूकोंके भग्न विहारोंके रूपमें परिणत हो चुके हैं! हमें तो निमित्त मात्र होना है।......निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन्।

समाजवाद स्वप्न नहीं है। वह एक अवश्यम्भावी सामाजिक व्यवस्था है। इतने-इतने दिनों तककी गंभीर साधना एवं पुष्कल त्यागके उपरान्त उपार्जित किया हुआ ज्ञान-विज्ञान व्यर्थ नहीं जायगा। इतने-इतने कष्टों और इतने-इतने उत्पीड़नोंकी अवस्थितिमें भी मानवी संस्कृतिको पुष्ट बनानेके ये पुष्कल प्रयास अवसानके तिमिरमें अभी ही विलुप्त नहीं होंगे। पूंजीवादकी अवस्थितिमें यह सुनिश्चित है कि मानवी सभ्यता अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती। ज्ञान और विज्ञानकी किरण-शलाकाओंके द्वारा मानवी सभ्यताके प्रोज्वल होनेमें जो सबसे प्रबल बाधा है, वह है पूंजीवादके काले बादलों को! पूंजीवादकी यह सघन श्याम घनमाला दुर्भाग्यकी भांति मानव-जातिके भाग्य-गगनमें आज

से, नहीं, शताब्दियोंसे प्रकाशका मार्ग अवरुद्ध किये हुए हैं।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके अन्तर्तममें जो एक भयंकर दुष्टता अन्तर्निहित है,—जो एक विचित्र मूर्खता छिपी हुई है, उसका स्पष्टीकरण विज्ञानके आलोक-प्रपातके द्वारा अच्छी तरह हो चला है!...कुरूप और घृणित यह वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था बहुत दिनों तक मानव-जातिके हृदयपर पतझड़का सैकत नर्त्तन करनेके उपरान्त अब क्लान्त हो चुकी है! विनाशकी गोदमें अब इसे विश्राम ग्रहण करना ही होगा!

समाजवादके प्रति अभिव्यक्त की गयी इस अवहेलनाका एक प्रमुख कारण वर्तमान मानव-जातिमें वैज्ञानिक दृष्टिभंगीका अभाव भी है। किसी बातको,...किसी पदार्थको,...किसी घटनाको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखनेके स्थानपर परम्परागत कुत्सित संस्कारोंके वशवर्ती होकर देखनेकी ही आदत ज्यादातर पायी जाती है। वर्तमान मानव-जातिमें अधिकतर व्यक्ति 'सत्य' के लोककी अपेक्षा 'असत्य' के मोहान्धकारको ज्यादा पसन्द करते हैं। यह एक ऐसा सत्य है, जिसने मानवी सभ्यताकी अग्रगतिको काफी अवरुद्ध किया है,...उसके मार्गमें काफी रोड़े अटकाये है! इसी अवैज्ञानिक दृष्टिकोणने एवं मूर्खता एवं उदण्डतापूर्ण अहम्मन्यताने एक नहीं, सहस्राधिक सत्य-जिज्ञासुओंके जीवनको अत्याचारों और निदारुण उत्पीड़नोंसे व्याकुल कर डाला! मानव-जातिके अधिकतर सदस्योंकी इसी अज्ञाताने अनेकों दार्शनिकोंको,...अहर्निशकी अनवरत साधनामें लीन रहते अनेकों महा-मनीषी वैज्ञानिकोंको जहरका प्याला

पिलाया, फांसीके तख्तोंपर सुलाया और प्रज्वलित अग्नि कुण्डोंमें निक्षिप्त किया! यद्यपि समयका प्रगतिके साथ इन अत्याचारोंने दूसरा रूप ग्रहस कर लिया है, तथापि यह तो निश्चि पूवक कहा जा सकता है कि समाजवादके प्रति विष-वमन करने वाले समस्त प्रपञ्च-प्रवीफ शिखण्डी अपनी स्वार्थ लिप्सा एवं अवैज्ञानिक दृष्टि-भंगीके कारफ मानव-जातिके भाग्याकाशमें सदैव काले-काले बाद-लोंकी अवस्थिति ही रहने देना चाहते हैं।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके स्थान पर यह जो अभिनव स्वर्गिक सामाजिक व्यवस्था कायम होगी, वह क्रियात्मक रूपसे तो नई होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं! किन्तु विचारात्मक रूपसे तो यह वहुत ही पुरानी है। ग्रीस और रोम तकके अनेकानेक दार्शनिकोंने धनकी असम विभाजन-प्रणालीपर असन्तोष प्रकट करते हुए यह दिखलाया है कि सभी प्रकारकी सामाजिक कुरी-तियोंका उद्गम इसी कारण होता है। चोरी और डकैती; व्यभि-चार और जुआचोरी आदिका प्रमुख कारण यही है। एक नहीं, ऐसे-ऐसे अनेक दार्शनिक हो गये हैं जिन्होंने इस कुत्सित सामाजिक व्यवस्थाके प्रति घोर असन्तोप प्रकट किया है। संसारमें विचारोंकी शक्ति सामान्य नहीं होती। युगोंके ये विचार ही आज पुंजीभूत होकर क्रियात्मक रूपमें प्रकट होनेको मचल हो उठे हैं।

इस दिशाकी ओर सबसे पहले कदम रखनेवाले देशोंमें रूसका नाम उल्लेखनीय है। उसने इन २० वर्षोंमें ही दुनियांको दिखला दिया कि किस प्रकार वर्त्तमान कुत्सित सामाजिक व्यवस्थाका

विलोप-साधन किया जा सकता है,—किस प्रकार धनकी असम विभाजन प्रणालीको प्रनष्ट करके प्रत्येक व्यक्तिको समान सुविधाएं प्रदान की जा सकती हैं! सचमुच, सोवियट इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है,—संसारके उन क्लीब व्यक्तियोंको गहरी थप्पड़ लगानेवाला है, जो यह कहते हैं कि समाजवाद तो स्वप्न-द्रष्टाओंका स्वप्नमात्र है, उसे क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सकता!

समाजवादकी स्थापनासे समाजकी कितनी शीघ्र उन्नति होती है,—सभ्यता और संस्कृति कितनी त्वरित गतिसे उन्नतिकी ओर अग्रसर होती है, इसका भी ज्वलन्त प्रमाण हमें सोवियट रूसमें प्राप्त होता है। इन बीस वर्षोंमें ही उसने सभी क्षेत्रोंमें जो उन्नति कर दिखायी है, वह अन्य राष्ट्रोंके लिये, जहां समाजवादके बदले घृणित धनतन्त्रवाद प्रचलित है, यह अत्याश्चर्यका विषय है!

लेकिन इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं! पूंजीवाद उन्नतिका महाप्रबल प्रतिरोधक है! इसकी अवस्थितिमें उन्नतिके सभी द्वार बन्द हो जाते है! रूसने इसको अपनी सीमासे दूर खदेड़ दिया, और यही कारण है कि आज वहां बेकारी नामकी चीज कोषमें ही मिलती है!......

समाजवादकी स्थापनासे रूसमें किस प्रकार सर्वतोमुखी जागृति हो रही है, यह जार्ज वर्नर्डशा, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जवाहर लाल नेहरू, एच० जी वेल्स, आदिके रूस संबंधी वर्णनोंसे स्पष्ट हो जाता है! दुनियांमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं, जो रूसके सम्बन्धमें मिथ्या धारणाएं फैलाया करते हैं,—जिनके कथनानुसार वहां हत्या,

डकैती और सीनाजोरीका बाजार गर्म है और रास्ता चलते खून खराबियां हो जाया करती हैं। लेकिन इसके उत्तरमें 'पोप' की निम्नलिखित पंक्तियोंका उद्धरण काफी होगा—'संसार परनिन्दा-कारियोंसे परिपूर्ण है। ये बदमाश परनिन्दुक निष्कलङ्क गुणपर आघात करते हैं। ऐसे अनेकानेक मनुष्य हैं, जो दिनरात दूसरोंकी मिथ्या आलोचना करके आनन्दित होते हैं एवं औदार्य और सच्चारता पर आक्रमण करनेके लिये पथ-पथमें उत्साहके साथ घूमते फिरते हैं। वे यशके लोभमें शहरोंमें चारों ओर अपना ढोल पीटा करते हैं। जिन लोगोंने अपनी आंखोंसे रूसको देखा है एवं अपनी पक्षपातरहित बुद्धिसे उसपर विचार किया है, वे यही कहेंगे कि वर्त्तमान मानवी जगत्में रूस ही एक ऐसा स्थान है,जहांके निवासी अन्य देशोंके निवासियोंकी अपेक्षा अधिक सुखी और अधिक समृद्ध हैं! विद्याके प्रति प्रेम भी रूसमें बहुत जोर पकड़ता जा रहा है! वहांसे जितनी किताबें इधर हालमें प्रकाशित हुई है,शायद उतनी यूरोपके तथाकथित उन्नत राष्ट्रोंमें सब मिलाकर भी न हुई होगी!

कहां तक लिखा जाय, 'समाजवाद' के रूपमें मानव-जातिको एक ऐसा वरदान प्राप्त हो रहा है, जो उसके समस्त हाहारवको विदूरित करके उसके भाग्याकाशमें हर्षोल्लासकी रजत-रश्मियां वितरित कर देगा! इस समय जितना हाहारव है,—जितनी बेकारी और अशान्ति है, उसका लेशमात्र भी नहीं रह जायगा! सुख और आनन्दकी परियां मर्त्यलोकके प्रांगणमें नृत्य करती हुई नित्य नवीन श्री-सुषमाकी सृष्टि करेंगी।

समाजवादका आगमन अवश्यम्भावी है। तैयारियां हो चुकी हैं! संसारके समस्त तरुण आज विप्लवी—महा विद्रोही होकर दुनियांकी इस महफिलमें आग लगानेको बद्धपरिकर हो उठे हैं!... उनका उष्ण रक्त इस अमानुषिक अत्याचारसे खौल उठा है! एक ओर है धनगृह हिंस्र नरपशु पूँजीपति, जिनके मानसमें सदैव कुत्सित भावनाएँ क्रीड़ा करती रहती हैं और एक ओर है अग्नि-स्फुलिङ्गोंमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाले क्रान्तिकारी युवक! एक ओर हैं बड़े-बड़े प्रासादोंमें रहनेवाले वासना-प्रेरित धनिक और दूसरी ओर हैं कांटोंपर नंगे पैर चलनेवाले तापस तरुणोंका सेना-दल! एकओर है अहर्निश क्रीड़ा-रत रहनेवाले पापियोंकी जमात और दूसरी ओर है प्रलयकी ज्वालाओंमें भी अवाध गतिसे विचरण करनेवाले दीवानोंकी सेना! एक ओर है "अँधेरी है रात सजन रहिहैं कि जैहैं" का गीत और दूसरी ओरसे आवाजें आ रही हैं—"बग़ावत मेरी मंजिल हैं,बग़ावत रास्ता मेरा' के मस्त तराने......। एक ओर हैं पूँजीपतियोंके टुकड़ों पर पलनेवाले बदमाश सैनिक और दूसरी ओर हैं मानव-जातिकी हितैषणासे अनुप्रेरित तपस्वी! यह कहनेकी जरूरत नहीं कि किसकी विजय होगी,—भविष्य किसके हाथमें है!

मानव-जाति अब अधिक दिनों तक जञ्जीरोंमें जकड़ी हुई नहीं रह सकती!—कोटि-कोटि प्रतिभाशाला व्यक्ति अपनी शक्तियोंको अब अधिक दिनों तक अवरुद्ध नहीं किये रह सकते! —अन्धकारकी सघन श्याम घनमालाओंको चीरकर प्रकाशकी जो

यह अभिन्न किरण पृथ्वीपर समाजवादके रूपमें आ रही है, उसे संसारकी ये क्षुद्र शक्तियाँ नहीं रोक सकती !

संसारकी वर्त्तमान गतिविधियां भी इसी बातको जोरोंके साथ प्रमाणित कर रही हैं कि मानव-जाति पूँजीवानकी वैभव-समाधि-पर विनाशका ताण्डव देखनेको उत्सुक हो उठी है ! जो नीच हैं,—जो सभ्यता और संस्कृतिके आलोकसे भयभीय होते हैं,—जो धनगृध होकर मजे लूटते हैं, वे समाजवादका आगमन नहीं चाहते ! लेकिन उनके चाहने या न चाहनेका कोई प्रभाव नहीं ! नैशान्धकार अवश्यमेव विदूरित होगा ! प्रभातकी कोमलकान्त विहग-ध्वनियोंसे सारी वसुन्धरा अवश्यमेव मुखरित होगी। सृष्टिकी संचालक शक्तियां स्वयमेव प्राचीगगनमें कुङ्कुम विखेरकर इस अभिनव सामाजिक व्यवस्थाके अरुणोदयका स्वागत करेंगे। निखिल चराचर इस सौंदर्य-छविपर विमुग्ध हो उठेगा।

विप्लवका पथ-प्रदर्शक—
विज्ञान !

पृथ्वीके सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानवके जीवन से नारकीयता विदूरित करनेके लिये यह महाक्रान्ति होगी ! एक क्षणिक उद्दीपनासे प्रभावित होकर इस महाक्रान्तिका सूत्रपात नहीं ही चला है । कोटि-कोटि मानवोंके जीवनकी विपुल व्यर्थता और कटुता असंतोष के अग्नि-कुमारोंके साथ आस्फालन कर उठी है ! कोटि-कोटि तरुणोंके जीवनकी घोर निराशाएं विद्रोह करनेको विश्वके वक्षस्थल पर मचल उठी है !...युगोंके इस पूंजीभूत असंतोषका पथ-प्रदर्शक है विज्ञान उसीने निपीड़ितोंको उनके कष्टोंका उद्गम बतलाया है; अब वही उनका पथ-प्रदर्शन भी करेगा !

अपने क्षुद्र अस्तित्वके चारों ओर मानव-जातिने जिस कलुषित वातावरणकी सृष्टि कर रखी है, उसकी जड़पर ही विज्ञान की प्रगतिके द्वारा आघात होने लगा है !

अब तक इस क्षुद्र ग्रहके अधिकांश चिन्तानायक सोचा करते थे,—यह पृथ्वी ही विश्वका केन्द्र-स्थल है। नक्षत्रोंकी श्री-सुषमाको, सुधाकरकी स्निग्ध रूप-छविको, दिवाकरके तिग्म अंशु-जालको इस पृथ्वीके अस्तित्वके अपेक्षा है ! पृथ्वी इस विश्वमें सर्वोत्कृष्ट ग्रह है। और इस पर रहनेवाले प्राणियोंमें सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव ही इस विश्वकी सर्वश्रेष्ठ कृति है !

विज्ञानने उसकी मिथ्या धारणापर आघात करते हुए उसे बतलाया कि ओ मूर्ख ! इस विराट ब्रह्माण्डमें इस पृथ्वीकी कोई हस्ती नहीं है। तुम्हारे सौर-मण्डलसे बढ़े चढ़े लाखों सौर-मण्डल इस विश्वमें हैं। इस सूर्यके समान करोड़ो सूर्य इस ब्रह्माण्डमें विद्यमान हैं। तू तो इतना नगण्य और क्षुद्र है कि मुझे तेरे अस्तित्व पर भी शङ्का हो रही है।

अब तक मानव सोचता था,—आरम्भमें खुदा मियांने आदम और हौवाको भेजा। उन्हींके अपराधने मानव-जातिकी उत्पत्ति की।......पृथ्वीके विभिन्न भागोंमें इसीसे मिलती जुलती कल्पनाएं

—मानव-जातिकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली कल्पनाएं प्रचलित थीं।

विज्ञानने बतलाया कि ओ अज्ञानी! तेरी उत्पत्ति विकासके नियमके अनुसार हुई है। तू पृथ्वीका पुत्र है। पृथिवीके विभिन्न तत्त्वोंसे तेरे शरीरका निर्माण हुआ है। पृथ्वीके वर्त्तमान स्वरूपके निर्माणमें निखिल विश्वकी शक्तियोंका—तत्त्वोंका हाथ है। फलतः तेरे शरीरमें इस विश्वके सभी प्रेरक तत्त्व अन्तर्निहित हैं। तू क्षुद्र भी है और महान् भी।'

मनुष्य बैलगाड़ियों पर, घोड़ों पर एवं पशुओंके द्वारा खींचे जाने वाले रथों पर सवार होकर यात्रा किया करता था। उसके पास दूर देशोंकी यात्राके साधन अत्यल्प थे!

विज्ञानने उसे एकसे एक बढ़कर सवारियां प्रदान कीं और कहा कि बेवकूफ! अपने भ्रान्त विचारोंको छोड़ और सत्यके प्रकाशमें आ। दुनियांको देख और अपने आपको जाति किम्वा देशकी क्षुद्र सीमा-रेखामें आबद्ध न रख! पागल!

विज्ञानकी अग्रगतिने कितनोंको चौंकाया, कितनोंको चकित किया, कितनोंको हर्षित किया, कितनोंको विस्मय-विमूढ़ किया, कितने ही आगेको दौड़ पड़े; कितने ही हताश होकर पीछे पड़ गये और कितने ही स्तम्भित होकर जहांके तहां खड़े रह गये!

विज्ञानने मानवी-सभ्यताके मार्ग-तिमिरमें किरण-शलाकाएं वितरित कीं। जिसे अब तक मलयानिल-सेवित उद्यान समझा जाता था, उसके वास्तविक रूपको विज्ञानने प्रकट कर दिया और

बतला दिया कि मूर्ख ! यह नेत्र-रञ्जक उद्यान नहीं; मरुस्थलीकी अपरिसीम बालुकाराशि है !

इस प्रकार भांति-भांतिसे मानव-जातिके अन्धकाराछन्न भाग्य-गगनमें किरणें वितरित करते रहने पर भी मानव-जातिकी दुर्-वस्था विदूरित न हो पायी; इतने-इतने विज्ञान-प्रदत्त सुख-साधनोंसे लाभ उठाया केवल कतिपय व्यक्तियोंने ही। यहां तक कि वैज्ञानिकों को भी अपने आविष्कारोंकी प्रसूतिके लिये इन पूंजीपतियोंका कृपाकांक्षी होना पड़ा ! विज्ञानोत्पादित जिन यन्त्रोंके द्वारा मानव-श्रमको अत्यल्प करके उत्पादनको बढ़ाना चाहा था, उनसे ही इन पूंजीपतियोंने मानवताका शोषण आरम्भ कर दिया। गंभीर विचार-शील मनीषियोंने इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया। विज्ञान सम्मत प्रणालीसे सामाजिक व्यवस्थाका अध्ययन किया और तब उन्होंने मुक्तकण्ठसे घोषणा कर दी,—"मानव-जातिके वर्त्तमान दुःखों एवं कष्टोंका नाश तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था न स्थापित हो जाय, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुसार काम करे और अपनी आवश्यकताके अनुसार चीजें प्राप्त करे ! इस प्रकारकी सामाजिक व्यवस्थाकी स्था-पनामें जो सबसे प्रबल बाधा है वह है पूंजीवाद की ! अतः सर्व-प्रथम इसका विनाश-साधन करना होगा !"

विज्ञानने यह आविष्कार मानव-समाजके क्रम-विकासकी पर्या-लोचना करके किया है। वैज्ञानिक समाजतन्त्रके प्रतिष्ठाता मार्क्स और एँजेल्सने इतिहासकी मूल नियामक शक्तियोंकी विवेचना करते

हुए यह बतलाया कि नूतन सामाजिक व्यवस्था विज्ञानकी शिक्षा और निर्देशका अनुगमन करेगी।

अब तक संसारके प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने जीवनको दुःखमय एवं क्लेशोंसे आकीर्ण समझकर जीवन-पथपर चले जा रहे थे.लेकिन विज्ञानने उन्हें बतलाया कि यह तुम्हारे ही आलस्यका,—तुम्हारी ही परम्परागत अज्ञताका परिणाम हैं, जो तुम अपनी साधारण आवश्यकताओंकी भी पूर्त्ति: नहीं कर पाते! उठो, जागो और नष्ट-भ्रष्ट कर दो पूँजीवादके आधारपर खड़ी की गयी इस वर्त्तमान सभ्यताको!

फलतः संसारके कतिपय भागोंमें क्रान्तियां हुईं। कविने अपनी लेखनीसे अग्नि-स्फुलिङ्गोंकी वर्षा आरम्भ की। चित्रकारने फांसीके ·ँ पर झूलते हुए पुरुष सिंहोंकी मुसकाने चित्रित कीं! चारों ओरसे किशोर, नवयुवक, युवक, कृषक, श्रमिक सब दौड़ पड़े—

क्रान्तियां हुईं, विद्रोह हुए, उथल पुथल मच गयीं; तख्त उलट दिये गये!......

(२)

बीसवीं शताब्दीके विज्ञानालोक विभासित युगमें जो महान् आदेश विश्वकी सृजन-शक्तिसे हमें प्राप्त हो रहा है, वह है—'संसारके समस्त श्रमिको! ऐक्य-सूत्रमें आवद्ध होकर संगठित रूपसे प्रतिरोधक शक्तियोंके विरुद्ध महाभियान करो!'

श्रमिक कौन है?—पूँजीपति चोरों और साम्राज्यवादी डाकुओं एवं कायर भिखारियोंके अलावा सभी श्रमिक हैं। अपने प्रतिभा-

शाली मस्तिष्कसे नूतन विषयोंकी उद्भावना करके विश्व-साहित्यकी श्री-वृद्धि करनेवाले साहित्यिक श्रमिक हैं;प्राणोंके एक-एक स्पंदनको अपनी स्वर-लहरीमें सन्निविष्ट करके अपने गीतोंसे मर्त्यलोकके वातावरणको स्वर्गोपम बना देनेवाले अभिनेता और गायक श्रमिक हैं, तूलिकाके द्वारा कल्पनाकी एक-एक झंकृतिको चित्रोंका रूप प्रदान करनेवाला चित्रकार श्रमिक है; और खेतों और खलिहानोंमें, मिलों और दूकानोंमें रातदिन खटनेवाले तो श्रमिक है ही !

यह जो महाक्रान्ति होगी, उसमें किसी व्यक्ति विशेषका स्वार्थ नहीं होगा; यह समग्र मानव-जातिके हित-साधनके लिये होगी !—पृथ्वीपर निवास करनेवाले सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानवके जीवनसे नारकीयता विदूरित करनेके लिये यह महाक्रान्ति होगी ! एक क्षणिक उद्दीपनासे प्रभावित होकर इस महाक्रान्तिका सूत्रपात नहीं हो चला है। कोटि-कोटि मानवोंके जीवनकी विपुल व्यथता और कटुता असन्तोषके अग्नि-कुमारोंके साथ आस्फालन कर उठी है ! कोटि-कोटि तरुणोंके जीवनकी घोर निराशाएँ एवं निदारुण यातनाएँ विद्रोह करनेको विश्वके वक्षस्थल पर मचल उठी हैं !......युगोंके इस पुंजीभूत असन्तोषका पथ-प्रदर्शक है विज्ञान ! उसीने निपीड़ितोंको उनके कष्टोंका उद्गम बतलाया है; अब वही उसका पथ-प्रदर्शन भी करेगा।

ये रत्न-दीपोज्वल गर्वोन्नत हर्म्य, जहां आज धन-बल-दृप्त कमीने सहास अप्सरियोंके नृत्य-गानसे चित्तको विनोदित किया करते हैं, बहुत शीघ्र या तो उलूकोंके भग्न विहार-स्थल हो जायँगे या

समाजकी उन्नतिके केन्द्र-स्थल। जहां आज महफिलें सजी हुई हैं; रूपाजीवाओंके नृत्योंसे,—कोमलकान्त गीतोंसे धनपति अपनी कुत्सित वासनाओंकी पूर्त्ति कर रहे हैं, वहां महानाशका भयंकर ताण्डव होगा। पृथिवीके समस्त मनीषी समस्त सत्यप्रेमी महाव्रती-गण अत्यन्त आशा और उत्साहके साथ क्रान्तिके इस महापर्वकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

नवयुगका आह्वान करनेवाले तरुणोंका दल

हां, आज हमें जाग्रत होकर शंखनाद करनेकी आवश्यकता है !—वह शंखनाद, जो निखिल वसुन्धराके प्रसुप्त चैतन्यराहित युवक-दलोंके प्राणोंमें एक विचित्र उन्मादना सन्नि-विष्ट कर दे, जो उन्हें मृत्युका वरण करनेके लिये दीवाना बना दे ! संसार आज रौरवतुल्य हो गया है ! यहां न शक्ति है, न सुख। कुत्सित विचारोंके परम्परागत मोह-जालसे समाच्छन्न जीवन-गगनमे विद्युन्मालाकी भांति प्रकाश निक्षिप्त करना होगा !

प्रलयकी ज्वालाओंमें भी अवाध गतिसे विचरण करनेका साहस रखनेवाला नवयुवक-दल ही देशको बन्धन विमुक्त करनेमें समर्थ हो सकता है! जीवनके विविध कठोर एवं कोमल, मृदुल और तिक्त अनुभवोंको हृदयमें एकत्रित करके जीवनकी गोधूलिका दर्शन करनेवाले वृद्ध उचित सम्मतियां भले ही दे दें—समयोचित बातें भले ही बतला दें, मगर कठोर कर्मक्षेत्रमें उतरकर ध्वंस-लीलामें शामिल होनेकी शक्ति उनमें नहीं मिल सकती। जीवनके सारे सुखोपभोगोंकी हत्या करके,—चरणोंपर लोटते हुए वैभव-विलासको विरक्ति भरी दृष्टिसे देखकर अपने निर्धारित कण्टकाकीर्ण मार्गपर चलनेका उत्साह जिन तरुणोंमें होता है, वे ही सत्यके प्रकाशको अवरुद्ध करनेवाले परदोंको चीर डालनेमें समर्थ हो पाते हैं,—परतन्त्रता और पराधीनताको अवसानके तिमिरमें विलुप्त कर पाते हैं!

सचमुच,यौवन सौन्दर्यका, - शक्तिका—कर्मोन्मादनाका आवासस्थल है। सृष्टिका सौंदर्य यहां ही गोचर होता है! जीवनमें कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं! यौवनके मदसे उन्मत्त होकर चले जा रहे हैं जीवनके पथपर! इस बातकी कोई चिन्ता नहीं कि मार्ग कण्टकोंसे आकीर्ण है या कुसुमोंसे! अन्धकारका साम्राज्य हो, उलूकोंका स्वर श्रुतिगोचर हो रहा हो,या प्रकाशका देवता किरणोंको

वितरित कर रहा हो,—उसके लिये तो दोनों ही बराबर हैं ! वह तो निरन्तर अपनी ही उन्मादनामें विभोर होकर,—तन्मय होकर चलता जाता है !……सचमुच यौवन-दलका यह स्वरूप कितना सुन्दर है, कितना आकर्षक और मनोहर है।

गृहबधूका प्यार उसे अपनी ओर नहीं खींच पाता। उसकी अश्रुमलिन आंखें और प्रेमभरी बातें उसके हृदयको वशीभूत नहीं कर पातीं। सङ्गी साथियोंका स्नेहालाप उसे अपने ग्रामकी सीमामें आबद्ध आसक्त नहीं रख पाता! विचित्र-विचित्र आकांक्षाओंको लेकर,—एक अविज्ञानित उन्मादनासे अनुप्राणित होकर वह चल पड़ता है,—एक अविदित दिशाकी ओर! उसके प्राणोंमें प्रलयकी बांसुरी बजती रहती हैं! मस्तिष्कमें तूफान उठता रहता है! हृदय-प्रांगणमें असन्तोष और अतृप्तिके अग्नि कुमार आस्फालन करते रहते हैं! उसकी भावनाएं, अपार, विपुल और निर्बन्ध भावनाएं जब शब्दोंका परिधान पहनकर प्रकटित होती हैं, तो वातावरण विक्षुब्ध हो उठता है !

हां, ऐसा होता है वह तरुणोंका दल!

लेकिन इतना लिख चुकनेके बाद,इतनी देरतक अपनी कल्पना-प्रियाके साथ विचरण करनेके उपरान्त जब मैं अपनी पारिपार्श्विक परिस्थितियोंको देखता हूं, तो हृदय क्रन्दन कर उठता है! कितना दुरुपयोग हो रहा है जवानोंकी प्रलयंकर शक्तियोंका! उचित अवसर पाकर जो युवक संसारको स्वर्गतुल्य बना देते,—नवीन आविष्कारोंके द्वारा पृथ्वीके निवासियोंके जीवनमें अभिनव आलोक

निक्षिप्त करते,—अपनी साहित्यिक एवं दार्शनिक कृतियोंके द्वारा मानव-जातिके ज्ञान-कोषको विवर्धित करते, वे ही जीवनकी मदिरामयी घड़ियोंको कुछ चांदीके टुकड़ोंके लिये कलंकित कर रहे हैं। कोपलोंपर अरुणिमा नहीं है, शरीरमें तेज नहीं हैं, जीवनमें कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। कोई रस नहीं, कोई स्फूर्ति नहीं, जीवनमें कोई आकर्षण नहीं। राशि-राशि अभिशाप-भारसे म्लान एवं विषण हो कर चले जा रहे हैं जीवन-पथपर।

मेरी कल्पनाके उस तरुण-दलमें और इस वास्तविक तरुण-दलमें कितना अन्तर,—कितना विभेद है। यौवनको कितना कुत्सित और हेय बना दिया गया है।

+ + + +

हां, आज हमें जाग्रत हो कर शंखनाद करनेकी आवश्यकता है।—वह शंखनाद,जो निखिल वसुन्धराके प्रसुप्त चैतन्यरहित युवक-दलोंके प्राणोंमें एक विचित्र उन्मादना सन्निविष्ट कर दे। जो उन्हें मृत्युका वरण करनेके लिये दीवाना बना दे। संसार आज रौरवतुल्य हो गया है। यहां न शक्ति है, न सुख। कुत्सित विकारोंके परम्परागत मोह-जालसे समाच्छन्न जीवन-गगनमें विद्युन्मालाकी भांति प्रकाश निक्षिप्त करना होगा।

+ + + ÷

संसार आज कितना कुत्सित और विभत्स हो गया है। मानव-जातिकी साम्प्रतिक दुरवस्थाको यदि किसी अन्य ग्रहका वासी आ कर देखे, तो आश्चर्य-चकित हुए विना नहीं रहेगा। साम्यतिक

उन्नति इतनी अधिक हो गयी है; वैज्ञानिक प्रगति इतनी त्वरित गतिसे हो रही है; लेकिन फिर भी अभी तक मानव-जातिका प्राथमिक प्रश्न—रोटीका प्राथमिक प्रश्न भी हल नहीं हो पाया है। सचमुच, यह कितने आश्चर्यकी बात है। जो समाजमें जितने ही ज्यादा बेकार हैं, जिनका सामाजिक उन्नतिमें जितना ही कम दाप है, वे उतने ही अधिक सुख-वैभवके अधिकारी बने हुए हैं। इस मर्त्यलोकका सा ऐसा विपर्यय शायद ही किसी अन्य लोकमें दृष्टिगत होगा। जो जनताको मानसिक खुराक देते हैं; वे साहित्यिक भूखों मरते हैं; अल्प वेतन पाकर ही उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। जो जनताको शारीरिक खुराक देते हैं, वे कृषक अनेक दुरवस्थामें पड़कर जीवन-यापन कर रहे हैं। स्वयं दुनियांको अन्न प्रदान करते हैं,किन्तु स्वयं उन्हे बुभुक्षित रहना पड़ता है। लेकिन `सामाजिक सुख सौविध्यके लिये कुछ भी नहीं करते, वे कमीने मजेमें जिन्दगी बसर करते हैं। मोटरोंपर चढ़कर गुलछर्रे उड़ाते हैं।

क्या यह व्यवस्था देखते हुए भी आजका तरुण-दल निश्चिन्त रहेगा? क्या इतना विपर्यय,—इतना अन्याय,—ऐसी नारकीय दुर्दशा देखकर भी आधुनिक तरुण-दलोंका रक्त नहीं खौल उठता? क्या मानवताके प्रांगणमें निशिवासर होनेवाला यह दानवताका ताण्डव आज तरुण दलोंके अन्तरतममें विद्रोहकी महावह्नि प्रज्व-लित करनेमें समर्थ नहीं हो पाता?

नगर और ग्राम दोनों ही आज दानवताके—पैशाचिकताके क्रीड़ा-स्थल हो रहे हैं। मानवको कहीं भी सुख नहीं—कहीं भी

शान्ति नहीं। सर्वत्र उसके प्राणोंको एक विचित्र हाहाकार अभिभूत किये रहता है। आज अगर सुखसे बीत जाता है तो कलकी चिन्ता उसे सताने लगती है। प्रातःकाल भोजन करके सो गया तो सायंकाल क्या खाया जायगा, इसकी चिन्तासे वह ग्रस्त रहता है। क्या ऐसी अवस्थामें इस पृथ्वीके समस्त तरुण-दल अपना कर्त्तव्य निर्धारित नहीं कर लेंगे।

रूसी कवि निकिटिनने गांवोंकी दुर्दशाका वर्णन करते हुए लिखा है:—

नमकीन और प्राणघातक हवा;
गन्दगीकी दुर्गन्धि।
सबपर फैली धूल,—मैले पैर और बेंचें।
दीवाल—सजाये जाला;
धुएं से काली झोंपड़ी;
वासी रोटी; वासी पानी।
जुलाहे खाँसते, बच्चे चिल्लाते;
—प्रभाव और पीड़ाका प्राबल्य।
सिरसे पैर तक जीवन भर परिश्रम,
और तब—भिखारी की कब्र।

और नगरोंकी अवस्था तो इतसे भी ज्यादा दूषित है। कलकत्ते, लन्दन, जैसे महानगरोंमें जनगणकी जो दुर्दशा है, उसे देखते हुए तो प्राण क्रन्दन कर उठते हैं। एक-से-एक विशाल प्रासाद हैं। एक-से-एक बढ़कर सुखके साधन है। लेकिन वे समस्त विशाल अट्टा—

लिकाएं और वे सुखके साधन किनके लिये हैं ! कतिपय पूंजीपतियोंके लिये। जिनके पास काफी पूंजो है, समाजकी महती हानि करके मानवताके नामपर मानवताको अपना करके, छलसे जिन्होंने काफी धन एकत्र कर लिया है; उन्हीं इने-गिने पूंजीपतियोंके लिये।

बस और अधिक दिनों तक ऐसी हालत नहीं रह सकती। संसारसे या तो मानव—जातिका ही नाश हो जायगा या इसे सुन्दर और आकर्षक बनाना होगा। स्वर्गिक श्री-सुषमाकी प्रतिष्ठा करनी होगी, ऐसी व्यवस्सा करनी होगी, जिसने समाजके प्रत्येक व्यक्तिको अपनी उन्नति करनेका पूर्ण अवसर मिले। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुआर परिश्रम करें और आवश्यकताके अनुसार चीजें प्राप्त करे।

जीवन क्या है ? एक छलना है, एक अभिशाप है . आधुनिक मानव केवल जीनेके लिये जीते हैं। उनके जीवनमें कोई रस नहीं कोई आकर्षण नहीं। महत्वाकांक्षाएं और मृदुल मधुर अरमानोंकी वस्तीमें तो उसी समय वज्रपात हो जाता हैं जब विकराल रूपमें रोटीका सवाल उपस्थित होता है। प्रातःकालकी विहग विनोदित घड़ियोंसे लेकर सन्ध्याकी धूमिल एवं अलस घड़ियों तक परिश्रम करनेपर कहीं सूखी रोटियां मिल पाती हैं। सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी कवि टामस हुडने वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाके परिणाम स्वरूप नारकीय जीवन-यापन करनेवाली एक सुन्दर वालिकाका चित्रण करते हुए लिखा है:—

जर्जर, थकित, अँगुलियाँ लेकर;
लाल-लाल, भारी आंखें ले,
बैठी धागा सुई पिरोती
नारी एक फटे चिथड़ों में।
सीना—सीना—सीना भूख
गन्दगी और गरीबी में भी;
यह "कमीज" का गाना उसने गाया,
व्यथित स्वरोंमें फिर भी:—

निम्नलिखित पंक्तियोंमें कोटि-कोटि सर्वहारा मानवोंकी अन्तर्व्यथा चीत्कार कर उठी है:—

मिहनत-मिहनत-मिहनत,
एकाकी मुर्गा जब कुकहूं करता;
मिहनत-मिहनत-मिहनत,
जब तक छत हो तारा नहीं चमकता।
मिहनत-मिहनत-मिहनत,
जब तक सिरमें शुरू न चक्कर होवे;
मिहनत-मिहनत-मिहनत,
जबतक आंख न भारी, धुंधली होवे।

लेकिन इतनी मिहनतके बाद,—इतने अथक परिश्रमके बाद उसे मिलता क्या है?

मिहनत-मिहनत-मिहनत,
ढीला पड़ता नहीं काम है मेरा।

पर क्या इसका वेतन,
सूखी रोटी, खरका विस्तर मेरा।
चिथड़े, गिरी हुई छत, नंगाफर्श,
मेज टूटी कुर्सी यह !
दिवार कोरी !—कृतज्ञ अपनी
छाया की, उस पर गिरती वह।

बस, जीवनमें अन्य कोई चीज नहीं। कोई आशा नहीं। अहर्निश परिश्रम करते रहना। रात हो, प्रभात हो, ग्रीष्म हो, शरद् हो। यौवनकी मदिरामयी रस-लोलुप घड़ियां हो, प्रियतमका साहचर्य हो या विप्रयोगकी कलेजेको झकझोर देनेवाली घड़ियाँ हों; वृद्धावस्थाका क्षत विक्षत शरीर हो। केवल

मिहनत-मिहनत-मिहनत,—
थके हुए घंटे पर घन्टे बजते जाते।
मिहनत-मिहनत-मिहनत,—
ज्यों बंदी हैं मिहनत करते जाते।

उफ़। यह है मानवताकीवर्त्तमान हालत। पूँजीवाद औरसाम्राज्यवादकी कठोर लौह-शृङ्खलाओंमें जकड़ी हुई इस तड़पती चीखती हुई मानवताको क्या मुक्ति करनेकी अग्निमयी आकांक्षा अधुनातन तरुणोंके हृदयमें आस्फालन नहीं करती ? क्या उनके प्राणोंमें कोई वज्र-कठोर आघात नहीं होता, निम्नलिखित गीतको सुनकर !

मिहनत-मिहनत-मिहनत—
धुंधले सावनके प्रकाश धीमेमें

मिहनत-मिहनत-मिहनत—
गरम, बसन्ती, चमकीले मौसिममें !

यह हालत है पूंजीवादके भीमचक्रमें निस्पेषित होनेवाली लक्ष-लक्ष नारियोंकी।

जर्जर, थकित उंगलियां लेकर—
लाल-लाल भारी आंखें ले,
बैठी धागा-सुई पिरोती
नारी एक फटे चिथड़ोंमें !
सीना-सीना-सीना—
भूख गन्दगी और गरीबीमें भी !

संसारके समस्त तरुण-दल यदि आज ऐक्यसूत्रमें आबद्ध होकर विप्लवका सूत्रपात कर दें,—पूंजीवाद और साम्राज्यवादके मूलोच्छेदके लिये महाभियान आरम्भ कर दें तो बहुत थोड़े समयमें ही मानव-जातिके वर्तमान दुःख क्लेश विदूरित हो सकते हैं। संसारके अनेकानेक साहित्यिक, विचारक वैज्ञानिक आज मानवी सभ्यताको प्रशस्त करनेके लिये तैयार खड़े हैं, लेकिन उनके पथमें पूंजीवादका जो विशालकाय पर्वत है, उसे नष्ट-भ्रष्ट करना होगा! जीवनकी समस्त शक्तिके साथ,- प्राणोंकी प्रबलतम आकांक्षाके साथ,—मस्तिष्कमें शान्ति और अन्तरतममें करोड़ों तूफानोंकी हलचल लिये हुए हमें आगे बढ़ना होगा।

लेकिन हमारी राहमें प्रतिरोध कम न होंगे,—हमें साधारण सङ्कटोंका सामना न करना होगा। महानसे महान सङ्कट और

कठिनसे कठिन विपत्तियां हमारे मार्गमें आयेंगी। हमें पहलेसे ही अपने हृदयको मजबूत बनाकर,—लक्ष्य-प्राप्तिका पूर्ण निश्चय करके विप्लवके इस कण्टकाकीर्ण मार्गमें पैर रखना चाहिए। संसारके समस्त साम्राज्यवादी और पूंजीवादी हमारी शक्तियोंको नष्ट करनेमें कुछ न उठा रखेंगे। वे छलसे, बलसे, प्रलोभनसे सभी प्रकारसे हमें लक्ष्यच्युत करनेकी कोशिश करेंगे। जिस प्रकार तपस्वियोंकी तपस्याको भङ्ग करनेके लिये इन्द्र अप्सराओंको भेजकर या अन्य तरीकोंसे काम लिया करता था, उसी प्रकार ये पूंजीपति भी हमारी इस घोर तपस्याको भङ्ग करनेमें कुछ न उठा रखेंगे। लेकिन तरुण-दलको महाव्रती तपस्वियोंकी तरह जीवन-यापन करना पड़ेगा।

तरुण-दल यदि अपनी शक्तियोंको पहचान लें और यह अच्छी तरहसे समझ ले कि उसके प्राणोंमें जो असह्य कर्मोन्मादना छिपी हुई है,वह किसी भी पार्थिव शक्तिके द्वारा प्रनष्ट नहीं की जा सकती, तो यह सुनिश्चित है कि वह संसारको एक अभिनिव रूप प्रदान कर देगा!—मानव-जाति जिस महान संकट-जनक अवस्थाके सम्मुखीन हुई है, उससे उसे परिमुक्त कर सकेगा।—अनेकानेक चिन्ताशील मनीषियोंके आकर्षणका केन्द्र बनेगा। माताएं उसे आशीर्वाद देंगी, बहनें उसका मंगल गायेंगी।

जहरके प्याले और फांसीके तख्ते

संसारमें एक नहीं ऐसे हजारों उदाहरण मिल सकते हैं। कौन-सा देश इस पृथ्वी पर ऐसा है, जहां सत्य-जिज्ञासुओंको अत्याचारियोंके द्वारा मृत्युका आलिंगन करनेको विवश न होना पड़ा हो—कारागारमें रहकर जीवनकी सुनहली घड़ियोंको नष्ट न करना पड़ा हो!—निर्वासनकी कठोर यातनाएं न सहनी पड़ी हों!

अठारहवीं, सोलहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दीकी बात नहीं, यह उस समयकी बात है, जब क्राइस्टकी जननीका भी जन्म नहीं हुआ था।

ग्रीसकी राजधानी एथेन्सके बाजारमें विविध वस्तुएं विक्रयार्थ रखी हुई थीं। उस समयकी शृङ्गार-सामग्रियोंसे सजधजकर युवक-गण बाजारमें घूम रहे थे। बहुमूल्य चीजें देखते; कीमत पूछते और खरीद लेते।

चारों ओर चहल-पहल थी। तत्कालीन सभ्यताके केन्द्र एथेंस-का वह बाजार वास्तवमें दर्शनीय था।

एक विख्यात दार्शनिक एक वस्त्र विक्रेताके यहां खड़ा-खड़ा विविध प्रकारके वस्त्र देख रहा था। उसके साथ उसके दो-तीन विद्वान मित्र भी खड़े थे। वस्त्र विक्रेतासे उस दार्शनिकने पूछा—'इस कपड़ेकी कीमत क्या है?'

वस्त्र-विक्रेताने कपड़ेकी जितनी कीमत बतलायी, उससे एक आदमी जीवनपर्यन्त भोजन प्राप्त कर सकता था। दार्शनिकने अपने साथियोंसे पूछा—'अब क्या किया जाय? कीमत तो बहुत ज्यादा है।'

'चलो किसी दूसरी दूकानपर चलें।' उसके एक साथीने कहा।

'लेकिन :दूसरे दूकानदारके यहां आप इतनी अच्छी चीज पा सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है।' दूकानदारने कहा।

दार्शनिक कुछ देर तक सोचता रहा। फिर कपड़ा लेते हुए बोला—"ठीक है। ऐसी अच्छी चीज और कहीं नहीं मिलेगी। दाम अधिक है तो हुआ करे।" उसने वस्त्रकी कीमत तुरन्त चुका दी।

थोड़ी दूर जानेके बाद उन्हें एक शस्त्र बेचनेवाला मिला। दार्शनिकने उसके शस्त्रको देखा और पूछा—"इनकी कीमत क्या है?"

शस्त्र-विक्रेताने कीमत बतला दी। दार्शनिकने कहा—'कीमत तो बहुत ज्यादा है।'

शस्त्र-विक्रेताने एक बार उसे सिरसे पैर तक समालोचनात्मक दृष्टिसे देखा, फिर बोला—'मेरे शस्त्रोंको खरीदना आप जैसोंकी शक्तिके बाहरकी बात है। व्यर्थ क्यों वादविवाद करते हैं?"

दार्शनिकने कुपित होकर उसकी ओर देखा। बोला—"तुम्हारे पास जितनेशस्त्र हैं,सबको मैंने खरीद लिया। यह लो उनकी कीमत।"

दार्शनिकके साथी उसकी ओर आश्चर्यान्वित होकर देखने लगे।

\+ \+ \+ \+

एथेंसके उसी बाजारमें साधारण वेशमें एक व्यक्ति घूम रहा था। उसके साथ न तो उसके मित्र ही थे और न उसकी चालमें उन युवकोंके समान कोई आकर्षण ही था। लेकिन उसके नेत्रोंमें एक विशेष आकर्षण था। उसके ओठोंपर मुसकराहट थी, मस्तकपर गम्भीर चिन्ता छायी थी।

उसने सारे बाजारको घूम-घूम कर देखा। मनुष्यके अन्तर्देशकी सघन कलिमाको,—उनकी वासनाप्रेरित कलुषित चित्त-वृत्तियोंको, उनके मूर्ख एवं अनभिज्ञतापूर्ण व्यवहारको देखा। अल्पज्ञ दार्शनिकोंकी अहम्मन्यतापूर्ण बातें सुनी।

बाजारके चौराहे पर खड़ा हो कर उसने लोगोंके मिथ्या विचारोंका,–तथाकथित दार्शनिकोंकी भ्रान्त धारणाओंका निराकरण करना आरम्भ कर दिया। अपनी अकाट्य युक्तियोंसे उसने यह दिखला दिया कि 'सत्य' ग्रीसके अहम्मन्य दार्शनिकोंको उपलब्ध नहीं हो सका है। वे उसकी छाया भी नहीं छू सके हैं।

कुछ लोग उसकी ओर आकर्षित हुए; कुछ चौंके; कुछ उसकी बातोंसे प्रसन्न हुए, कुछ क्रोधान्ध होकर उसका अपमान करने लगे।

एथेंसके अधिकारियोंको अपनी पोल खुलते देख क्रोध आया। उनलोगोंने देखा,– यह नवीन दार्शनिक हमारी वर्त्तमान उन्नत अवस्था पर कुठाराघात कर रहा है। हमारे सिद्धान्तोंका सरेबाजार बिरोध करके हमारे महत्वको जनताकी दृष्टिसे घटा रहा है।

आखिर, पारस्परिक कुमंत्रणा करके उन लोगोंने उस महामनीषीके लिये 'विषका पात्र' ही सर्वाधिक उपयुक्त समझा।

सान्ध्य दिवाकरको अन्तिम किरणावलियाँ प्रतीची क्षितिजको चूम रही थीं।

महामनीषीने—'सत्य' की खोज करनेवाले सच्चे दार्शनिक सुकरातने मुसकराते हुए जहरके प्यालेको ओठोंसे लगा लिया।

एक मुसकराहट और फिर सब कुछ समाप्त।

इस प्रकार मानव-जातिके अज्ञानान्धकारको दूर करके ज्ञाना-लोकका आह्वान करनेवाले मनीषीको उसकी तपस्याके पुरस्कारमें 'जहरका प्याला' मिला।

क्यों ?

इसलिये कि उसने मानवताके कश्मलको दूरीकृत करना चाहा था, इसलिये कि उसने मूर्खता और अज्ञताके स्थान पर ज्ञानकी प्रतिष्ठा करनेका प्रयास किया था,—इसलिये कि उसका हृदय 'सत्य' को प्यार करता था; परम्परागत मिथ्या विचारोंको नहीं;—इसलिये कि उसने उस समयकी प्रचलित मिथ्या सामाजिक धारणाओंके विरुद्ध बगावत की थी।

(२)

सुकरातको 'जहरका प्याला' मिला, उसे लटकना पड़ा सूलीपर!

कारण, उसका हृदय भी 'सत्य' को ही प्यार करता था। अपने प्राणोंकी दीपशिखाके आलोकसे वह सारी वसुन्धराको प्रोद्भासित कर देना चाहता था।...

उसका हृदय मानव-समाजकी दुःख-दुर्दशा पर,—उसके दयनीय आचरण पर क्रन्दन कर उठता था और वह चाहता था कि सारी मानवजाति सुखपूर्वक रहे। साम्य और बन्धुत्वकी भावना प्रसृत हो। सभी सुखपूर्वक कालातिपात करें। दैन्य और दारिद्र्यका कहीं चिन्ह भी न दृष्टिगोचर हो। हाहाकार और दानवी आचरणोंके स्थानपर शान्ति और मानवी-आचरणोंकी स्थापना हो।

कमरमें एक छोटा सा वस्त्र लपेटे वह मानव-जातिको सत्पथ दिखलानेके लिये नानाप्रकारके कष्टोंका वर्णन करता रहा।

किन्तु उसे मानव-जातिकी ओरसे पुरस्कारास्वरूप मिली—सूली

एक दिन, सन्ध्याकी धूमिल वेलामें एक निर्जन स्थानमें आततायियोंने क्रास पर टांग कर उसके पैरोंमें—उसके हाथोंमें कीलें ठोंक दीं।

दानवताने कहाः—'मूर्ख, तू मेरे स्थानमें मानवताको आहूत करना चाहता है।'

दुःख क्लेशने कहा—'पागल तू हमलोगोंके बदले सुख और शान्तिको बुलाना चाहता है।'

अज्ञानान्धकारने कहाः—'अभागे! तू हमें हटाकर ज्ञान-प्रकाश से मानवके जीवन-गगनको आलोकित करना चाहता है?

हां, मानव-जातिने उसे सूली पर लटका दिया।

कारण,—उसने प्रचलित सामाजिक धारणाओंके विरुद्ध बगावत की थी।

(३)

जहरके प्याले और फांसीके तख्ते।

बस, ये दोही चीजें हैं, जो मानवताको दानवताके शिकंजोंसे छुड़ानेवालोंको नसीब होती है! मानव-जाति इससे अधिक सुंदर पुरस्कार उन्हें नहीं दे सकती!

संसारमें एक नहीं ऐसे-ऐसे हजारों उदाहरण मिल सकते हैं। कौन-सा देश इस पृथ्वीपर ऐसा है, जहां सत्य-जिज्ञासुओंको अत्या-

चारियोंके द्वारा मृत्युका आलिङ्गन करनेको विवश न होना पड़ा हो !—कारागारमें रहकर जीवनकी सुनहली घड़ियोंको नष्ट न करना पड़ा हो !—निर्वासनकी कठोर यातनाएँ न सहनी पड़ी हों।

जहरके प्याले और फांसीके तख्ते।

संसारके समस्त विप्लववादियो ! तुम्हें मानव-जातिसे अबतक पुरस्कारस्वरूप यही मिलते आये हैं।

लेकिन अब मंजिल अधिक दूर नहीं। पीते चलो जितने भी प्याले मिलें; चढ़ते चलो फांसीके तख्तोंपर। गाते चलो क्रांतिका मनमोहक तराना।

अशान्ति शान्तिकी पुकारोंसे दूर नहीं हो सकती !

वर्त्तमान अशान्तिको 'शान्ति' की पुकारों से दूर करनेका प्रयास करनेवाले जरा उन माताओंके कारुणिक क्रन्दनको सुनें, जिनके शिशु दवाइयोंके अभावसे तड़प-तड़प कर मर गये !—उन पत्नियोके हाहाकारको सुनें, जिनके पति रातदिन श्रम करके भी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करने योग्य वेतनके अभावमें अपनी इहलौकिक लीला संवरण कर गये !—उस विद्यार्थीके प्राणोंके मौन निरोदनको सुनें, जो तीव्र बुद्धि होते हुए भी अर्थाभावके कारण विद्यार्जनसे वंचित रह गया है ।

'शान्तिकी रक्षा करो !"

आवाजें आ रही हैं—"शान्तिकी स्थापना करो ! अशान्तिसे कोई लाभ नहीं !"

शान्ति ! - मजेके साथ महलोंमें रहनेवालोंके लिये यह शब्द भले ही सुखकर मालूम हो, नाना प्रकारके सुस्वादु पकानोंका उपभोग करनेवाले भले ही इस शब्दमें आकर्षण पाते हों; मोटरोंपर सैर करनेवाले धनिक भले ही इसे अपने सुख-सौविध्यकी सुरक्षाके लिये अनिवार्य समझते हों,लेकिन बुभुक्षित और वस्त्रहीन व्यक्तियोंके लिये,—बेकारी और गरीबीके दानवी चक्रमें निष्पेषित होनेवाले युवकोंके लिये,—पुत्रहीना निर्धन माताओंके लिये,—पतिहीना पत्नियोंके लिये,—जीवनकी सबसे मधुर घड़ियोंमें ही प्रेमसे वञ्चित कर दिये जानेवाले हतभाग्य मानवोंके लिये 'शान्ति' एक विडम्बना है !

जो अपने घरमें आरामके साथ बैठे हैं, उन्हें शान्तिकी पुकार भले ही श्रवणसुखद ज्ञात हो, किन्तु जो पथिक मरुस्थलीकी तप्त बालुका—राशिमें चला जा रहा है, उसे शान्तिका उपदेश देनेसे लाभ क्या ? वह तो मरुस्थलीको पार करके ही दम लेगा ! वह तो शान्तिकी पुकार पर तभी ध्यान देगा, जब उसे बैठनेके लिये तृणसल कुस्थान प्राप्त हो जायगा; खानेके लिये कुछ खाद्य पदार्थ उप-

लब्ध होंगे; विटपीकी छाया मिलेगी ! जलती हुई सिकता राशिमें उसे शान्ति कहाँ ?

मानव-समाजमें आज हजारमें नौ सौ निन्यानवे व्यक्ति इसी प्रकार उत्तप्त मरुस्थलीके पथिक बने हुए हैं। उनके अन्तर्देशमें असन्तोषके अग्नि-कुमार आस्फालन कर रहे हैं। उन्हें शान्ति कहाँ ?

\+ ÷ + ÷

वत्तमान अशान्ति 'शान्तिकी पुकारों' से दूर नहीं हो सकती !

भूखके कारण जिनका पेट पीठसे सट गया है, वे 'शान्ति' नहीं चाहते; वे 'रोटी' चाहते हैं ! जिनकी झोपड़ियां महलोंकी क्रूर दृष्टिके कारण क्रन्दन कर रही हैं, वे 'गृह' चाहते हैं 'शान्ति' नहीं ! जिनके पास जाड़ेकी कलेजा कँपा देनेवाली रातमें वस्त्र नहीं, वे वस्त्र चाहते हैं, 'शान्ति' नहीं !

वर्त्तमान अशान्तिको 'शान्ति' की पुकारोंसे दूर करनेका प्रयास करनेवाले जरा उन माताओंके कारुणिक क्रन्दनको सुनें, जिनके शिशु दवाइयोंके अभावसे तड़प-तड़प कर मर गये !—उन पत्नियोंके हाहाकारको सुनें, जिनके पति रातदिन श्रम करके भी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करने योग्य वेतनके अभावमें अपनी इहलौकिक लीला संवरण कर गये !—उस विद्यार्थीके प्राणोंके मौन निरोदनको सुनें, जो तीव्र बुद्धि होते हुए भी अर्थाभावके कारण विद्यार्जनसे वञ्चित रह गया है !

शान्तिकी पुकारें—ये समस्त लेक्चरबाजियां व्यर्थ हैं ! पूँजीवादियोंकी यह भी एक नई बदमाशी है—एक नई चाल है ! सभी

शान्तिकी स्थापना तो तभी हो सकती है, जब समाजमें कोई भी भूखा न रह जाये,...कोई भी वस्त्राभावसे पीड़ित न रहे ! सबोंको समान सुविधाएं उपलब्ध हों !...और जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक शान्ति कहां ?

(२)

अधुनातन मानव-समाज रोगाक्रान्त है। जब तक इसका रोग-दूरीकृत नहीं हो जायगा, तब तक शान्तिकी स्थापना असम्भव है ! पूंजीवादका यह रोग बहुत पुराना हो चला है !

शान्तिकी स्थापनाका,—वर्त्तमान अशान्तिको दूरीकृत करनेका एक उपाय है महाक्रांति ! रोगी तब तक अपनी हायतौबा बन्द नहीं कर सकता, जब तक कि उसका रोग दूर नहीं हो जाता ! रोग दूर होनेके बाद ही उसे शांति प्राप्त हो सकती है !...लेकिन औषधि भी तो उसे कुछ अच्छी नहीं लगती। क्रांति भी एक कड़वी औषधि है,लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य कोई दवा कारगर नहीं हो सकती !

पूँजीवाद मानव-समाजका भयङ्कर रोग है, इसके प्रमाण क्या हैं,—शायद ऐसा प्रश्न पूछनेकी मूर्खता पूंजीवादके पक्षपाती करें ! किन्तु इसका उत्तर देना पुनरावृत्ति होगी ! न जाने कितने-कितने विचारकोंने यह अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है कि पूंजीवाद मानव-जातिका एक महाभयानक रोग है ! रोगसे मानवके शरीरमें कोई उत्साह नहीं रह जाना ! वह किसी भी काममें दिलचस्पी नहीं लेता ! एक विचित्र उदासी और विरक्ति-सी उसके चित्तमें परिव्याप्त हो जाती है। ठीक यही हालत वर्त्तमान मानव-समाज

की भी है। इसमें जो विचित्र प्रकारकी अवसन्नता—निराशाकी जो विचित्र धूमिलता छा गयी है, वह रोगकी ही निशानी है। रोगाक्रांत व्यक्ति जिस प्रकार जीवनमें चल फिर नहीं सकता; वही हालत वर्त्तमान समाजकी है! रोगाक्रांत व्यक्तिके घरमें नाना प्रकारके व्यञ्जन पड़े रहें; उसी प्रकार वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें भी भोजन-प्राचर्य्य होते हुए भी अधिकांश व्यक्तियोंको, समाजके अधिक हिस्सेको बुभुक्षित रहना पड़ता है। रोगाक्रांत व्यक्ति खाट पर पड़ा-पड़ा हायतौबा करता रहता है; उसका परिचारक उसे मना करता है कि भाई रोदन-क्रन्दन मत करो! इससे लाभ क्या? चुप-चाप खाटपर पड़े रहो! वर्त्तमान समाजमें भी लोग कहते हैं... भाई अशांतिसे क्या लाभ? चुप-चाप अपना काम किये चलो!... लेकिन क्या रोगाकांत व्यक्ति अपना रोदन-क्रन्दन तब तक छोड़ सकता है, जबतक कि उसका रोग दूरीकृत नहीं हो जाता।

अधिक ऊहापोह करनेकी अब आवश्यकता नहीं,—समय भी नहीं! संसारके कर्मक्षेत्रमें आज महाक्रांतिका आह्वान ही मानवताकी रक्षा कर सकता है! इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।

इस एक मुश्त खाकको गम दो जहां के हैं।

जिस प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओंमें महा-विप्लवकी आवश्यकता है, उसी प्रकार दार्शनिक विचार धाराओंमें भी। अवैज्ञानिक दृष्टि भंगीके कारण मानव-जातिकी जिन भीतियोंने अभिभूत कर लिया है, उनका निराकरण तबतक नहीं हो सकता जबतक कि दार्शनिक विचार-धारामें भी एक महान् क्रान्ति न कर दी जाय!

सृष्टिको अनादि माननेवाले कतिपय भ्रांत बुद्धिवाले दार्शनिकोंके मिथ्या सिद्धान्तोंपर ध्यान न देकर हम चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र समन्वित इस विशाल विश्वकी ओर दृग्पात करते हैं तो हमें स्पष्ट दीख पड़ता है कि इस मायाके मोहक साम्राज्यमें सर्व प्रथम जब प्राणसृष्टि हुई थी,सर्व प्रथम जब वनान्तके विटपी दलोंपर विहगमोंने अपने मंजुल स्वरोंसे पारिपार्श्विक वातावरणको मुखरित किया था, तभी से निरन्तर मानव-बुद्धि अगणित काल्पनिक कष्टोंसे पीड़ित रहती आयी है,निरन्तर अगणित चिंताएँ उसके मुखको खिन्न मलीन और तेजविरहित करती रही हैं। सर्व प्रथम जब विराट पुरुषने नाना रूपोंमें प्रविभक्त होकर मर्त्यलोकके हरे-भरे प्रदेशमें स्थिति हो प्राची के अरुणिम प्रवेश द्वारसे आते हुए दिनकरका स्वागत किया था, तबसे लेकर इस समय तक निरन्तर उसका मानस अगणित काल्पनिक कष्टोंसे अभिभूत रहा है; अगणित मिथ्या भावनाओंने सदैव उसके हृदयको दौर्बल्य एवं दैन्यसे परिपूरित कर रखा है; उसकी इच्छा-शक्ति एवं उसकी संकल्प-दृढ़ताको अगणित भ्रांत विचारोंने सर्वदा प्रनष्ट किया है।

दुर्बल शरीरका अधिकारी मानव जब अपनी स्थितिपर दृग्पात करता है, जब वह चन्द्रका सौंदर्य देखता है, सूर्यका तेज देखता है

और फिर उनसे अपनी तुलना करता है,तो उसका मस्तक लज्जासे अवनत हो जाता है। जब वह वनके निवासी मांसाहारी बन-राजकी शारीरिक शक्तिसे अपनी शारीरिक शक्तिकी तुलना करता है तो लज्जासे उसका हृदय संकुचित हो उठता है। कहां तो सुदूर व्योम-पथमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाले राशि-राशि विहंगम-वृन्द और कहां थोड़ी ही दूर चलकर शान्त हो जानेवाला दो पैरों वाला मानव! अपनी क्षुद्रताको देखकर वह अगणित भीतियोंसे कातर हो उठता है और प्रकृतिका उपासक बनकर अपने आपको दीन हीन मानने लगता है। कभी वह जीवित और दृश्य व्यक्तियोंकी आराधना करता है, तो कभी मृत और अदृश्य व्यक्तियों की। कभी वह चन्द्र और सूर्यके सम्मुख दण्डवत करता है तो कभी आकाश-पथमें गरजते हुए वारिदोंको देखकर किसी अज्ञात :और अदृश्य शक्तिकी सम्भावना स्वीकार करके उसकी उपासना आरम्भ कर देता है।

हृदयकी भावुकता पर विश्वास न रखकर बुद्धिवादके प्रशस्त मार्गके अनुयायी सत्यान्वेषी भी जब वर्षोंकी सतत चिन्तनशीलताके उपरान्त कुछ भी निर्णय नहीं कर पाते, जब रात्रि दिवसके निदि-ध्यासन और मननके उपरान्त भी उन्हें केवल इसी ज्ञानकी उप-लब्धि होती है कि वे अज्ञानी हैं, तब मानवकी इस असहायता पर आकाशस्थित नक्षत्र इस प्रकारके लगते हैं जैसे वे उसका उपहास कर रहे हों। विज्ञानको ही सत्य और जीवनका एकमात्र लक्ष्य समझने वाले विश्रुत वैज्ञानिकोंके जीवनमें भी कभी कभी ऐसी

घटनाएं समुपस्थित हो जाती हैं, जब उनके हृदयके दौर्बल्यका स्पष्टीकरण स्वयंमेव हो जाता है। सारे जीवन पर्यन्त सत्य और निर्भीकताकी उपासना करनेवाला दार्शनिक भी कभी-कभी मार्ग विपर्ययके कारण अत्यन्त क्लीब और तेज विरहित हो उठता है तथा अपनी शक्ति और अपने आत्मिक बलपर अविश्वास कर उठता है।

अपनी इस दुर्बलताको देखकर, अपने जीवनके कण-कणमें परिलक्षित इसी शक्ति विरहका अवलोकन करके मानव नाना प्रकारकी कल्पनाएं करना आरम्भ करता है। किसीकी कल्पनाएं बुद्धि-सम्मत होती हैं, किसीकी भावुकता-सम्मत। कोई सृष्टिके कण कणमें परिव्याप्त एक ही चेतन सत्ताको देखकर अपने जीवनका लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है, तो 'कोई स्वर्ग और नरककी कल्पना करता हुआ संसारके एक स्वतन्त्र-कर्त्ता और विधाताके अस्तित्वको मानना शुरू कर देता है। धीरे-धीरे नाना धर्म उपधर्म प्रचलित हो जाते है। अगणित मानव अगणित मार्गोंका अवलम्बन करके चल पड़ते हैं,—किसी अदृश्य लक्ष्यकी ओर!

कोई सारे जीवनकी सत्य साधनामें ही अतिपात कर डालता है. कोई इहलौकिक और कोई परलौकिक दोनों प्रकारकी उन्नतियोंको आवश्यक मानता हुआ अपने निर्धारित पथपर चलता जाता है। भावुकता प्रेमियोंकी चित्ताकर्षक कल्पनाओंपर और बुद्धिवादके प्रेमियोंकी नव-नव विचार सरणियों पर अविश्वास रखने वाले व्यक्ति अपने अन्य सहचारियोंकी भीति-कातरता पर हंसते हैं और

उनके हार्दिक दौर्बल्यको उपेक्षा भरी दृष्टिसे देखते हैं तथा समय-समय पर साधु-सन्त एवं पुरोहितों अथवा धर्म-प्रचारकों सा वेष बनाकर अपनेको वीतरागी विघोषित करते हुए बिना श्रमके ही धनका एकत्रीकरण करना आरम्भ कर देते हैं। लेकिन सर्व अविश्वासी और किसी प्रकारकी भी पाप-पुण्य विधात्री शक्तिपर आस्था न रखनेवाले ऐसे व्यक्ति भी सर्वथा चिन्ता शून्य नहीं होते। सन्देह और भ्रम उन्हें भी प्रति पगपर पीड़ित करते रहते हैं।

कभी-कभी मानवकी उस काल्पनिक बुद्धिकी अक्षमताके कारण जिसकी सहायतासे उसने उन शक्तियोंकी कल्पना की थी जो विश्वकी सञ्चालिकाएं हैं; उसकी इहलौकिक और पारलौकिक साधनाओंमें पारस्परिक विरोध आ उपस्थित होता है। ऐसी परिस्थितियोंमें कभी तो वह सान्सारिक उन्नतिकी ओर आकर्षित होता है और कभी पारलौकिक सुखोंकी ओर। पारलौकिक सुखके पीछे इहलौकिक सुखका बलिदान करने वाला व्यक्ति रात्रि-दिवस इसी चिन्तामें खिन्न और मलीन होता रहता है कि उसने इह-लौकिक आनन्दको क्यों विनष्ट कर दिया, ध्रुवको त्यागकर अध्रुवको क्यों अपनाया। और इहलौकिक सुखके पीछे पारलौकिक सुखकी उपेक्षा करनेवाला व्यक्ति यह सोचकर नितान्त उदास होता रहता है कि उसने क्षण-भङ्गुर जीवन-सुखके पीछे अविनाशी सुखको खो दिया। रात्रिके तिमिरमें चन्द्रमा अपनी चन्द्रिकासे निखिल काननको सौन्दर्य हाला पिलाकर चित्ताकर्षक कर देता है, दिवाके प्रकाशमें अपनी ज्योतिमय किरणोंके द्वारा निशि-प्रमीलाको निवारित

करता हुआ प्रभापुञ्ज दिनकर राशि-राशि विहङ्गोंको गायन गाने की प्रेरणा करता है। वर्षा आती है, उच्छृङ्खल जीमूत निखिल आकाशमें परिव्याप्त होकर चन्द्र और सूर्यका पद अवरुद्ध कर लेते है, पर मानव—भाग्यहीन मानव—चुप चाप चिबुकपर हाथ रक्खे हुए सोचता रहता है, चिन्ता करता रहता है, मुख-मण्डलपर उदासी छायी रहती है।

आखिर रात्रि-दिवसकी यह चिन्ता क्यों? किसी अदृश्य, अज्ञात शक्तिकी आराधना क्यों? यदि इस विशाल संसारके परे कोई ऐसा तेजोमय महापुरुष विद्यमान है जो प्रत्येक कार्यकी सञ्चालना करता है तो उसका आधीन्य स्वीकार क्यों किया जाता है? उसके आगे अपनेको सेवकके रूपमें उपस्थित करनेकी क्या आवश्यकता है? संसार संसार है, चांद चांद है, तारे तारे हैं, मनुष्य मनुष्य है। अपने आपको भूलकर अपने सत्य स्वरूपको विस्मृत कर—अभागे मानवने जिस क्षण आनन्द और अक्षय शक्तिकी अन्वेषणा किसी दूर स्थित पदार्थमें करनी आरम्भ की थी उसी क्षणसे उसका हृदय चिन्ता और दैन्यसे अभिभूत होता हुआ अन्ततोगत्वा सर्वथा परतन्त्र हो गया। अपनी भूलके कारण आज मानवकी ऐसी करुण स्थिति है कि एक वन-विहंगका जीवन भी उससे कहीं अधिक श्रेयस्कर और सुन्दर है। उसके जिस दुर्बल मस्तिष्कने सृष्टिके चिर सुन्दर प्रेममय आदि देवके सत्य स्वरूपको विस्मृत करके अपनी कल्पनाकी सहायतासे भीम भयानक शक्तियोंकी उपासना आरम्भ की थी, उसी मस्तिष्कने उसकी इहलौकिक

परिस्थितिको भी सवथा पतित कर दिया। विशाल विश्वके अगणित सौर मण्डलोंमें एक क्षुद्र सौर मण्डलकी छोटी सी पृथ्वीपर रहने वाले मानवोंने अगणित छोटी-छोटी जातियां बनाकर गृह-कलहकी अवतारणा की; छोटे-छोटे राष्ट्र बनाकर महायुद्धोंका आविर्भाव किया। भिन्न-भिन्न जाति, वर्ण, धर्म, समाज और देशोंकी स्थापना करके अपने जीवनको—कतिपय वर्षोंके छोटेसे जीवनको-सुख और शान्ति विरहित कर डाला। भाग्यहीन मानवने सकल अन्धविश्वासोंपर विजय प्राप्त करके अन्तमें पुद्गलका अध्ययन करके कुछ वैज्ञानिक आविष्कार भी किये तो उससे अपने ही विनाशमें सहायता प्राप्त की!

मायाके इस भ्रामक प्रदेशमें—इस संशय और अज्ञानमय मर्त्य-लोकमें—पूर्ण सत्यकी प्राप्ति तो दुर्लभ ही दीख पड़ती है। अपने जीवनसे समस्त कदैषणाओं एवं मिथ्या भावनाओंको दूरीकृत करके पूर्णानन्द स्वभावकी प्राप्ति तो अशक्य ही जान पड़ती है; लेकिन फिर भी शोपेनहार और हर्टमनके इस दुःख-दैन्य पूर्ण संसारमें कतिपय साधकोंने जीवनमें ही जिस आनन्दकी प्राप्ति कर ली है, उसे देखते हुए निराशाके इस प्रगाढ़ तिमिरमें कभी-कभी आशाकी उषः किरणें प्रेकटीभूत हो जाया करती हैं।

++ ++ ++ ++

चाहे विश्वके अन्तर्गत प्राणियोंका आविर्भाव दुःख और कष्ट सहन करनेके लिये हुआ हो, चाहे आनन्दके उपभोगके लिये; चाहे मानवकी उत्पत्ति सांसारिक स्थितिको सौंदयमयी करनेके लिये हुई

हो, चाहे सत्यका अन्वेषण करनेके लिये; इतना तो निश्चय है कि पराधीनता और परमुखापेक्षिता कभी भी श्रेयस्करी नहीं होती। अपनी शक्तियोंपर अविश्वास करके किसी दूसरी शक्तिपर केवल इसी कारण अवलम्बित होना कि वह शक्ति सभी बातोंमें बढ़ी हुई है और जिस क्षण चाहे उसी क्षण अपनेसे कम शक्तिवालोंका सत्यानाश कर सकती है, सर्वथा कायरताका सूचक है। संसारके संचालक देवताओंको भी यह अल्प बुद्धि मानव भयभीत होकर अपमानित करता है। भीति-संत्रस्त हो कर प्रेम और आदर करनेकी अपेक्षा अपनेको बलवान समझकर, अभिमानी बनकर, दर्पपूर्ण हो कर, घृणा और उपेक्षा एवं अवहेलना करना कहीं अच्छा है। भय और दर्प दोनों ही पाप है; पर भयभीत मानवकी बुद्धि संकुचित होकर पतित होती है और दर्प करनेवालेकी पथ भ्रष्ट होकर। ईश्वरको अपनेसे महान समझकर उपासना करनेवाले यदि केवल दण्डनीय होनेके भयसे ही ऐसा करते हैं तो वे अवश्य उपहासास्पद हैं।

जीवनका लक्ष्य अभी तक पूर्णरूपेण निर्धारित नहीं हो पाया और इसकी कोई आशा भी नहीं है। लेकिन इतना तो निश्चित है कि यह जीवन किसी महीयान शक्तिके आधीन होकर कारावासियोंकी भांति क्षितिज कारागारमें वद्ध रहनेके लिये नहीं। जो चीज मानवको किसी समय प्राप्त थी, उसीकी प्राप्ति वह कर सकता है, अप्राप्तकी नहीं। सृष्टिके पहले जो स्थिति उसकी थी, उसी स्थितिकी प्राप्ति निरन्तरकी साधनाके उपरान्त

उसकी होगी—यह दुर्निवार सत्य है। लेकिन फिर जीवनके अस्तित्वका कारण अर्थहीन हो जाता है। मनुष्य जहांसे चला था, लौट कर उसे फिर वहीं पहुंच जाना है! जिस पूर्ण आनन्द और अक्षय शान्तिका उपयोग वह अपनी संसृतियात्राके आरम्भमें कर रहा था उसीका उपभोक्ता उसे अविराम सत्य-साधनाके बाद भी होना है! जीवन आनन्दके लिये ही नहीं है और न दुःखके ही लिये। जीवन न तो कर्त्तव्यके ही लिये है और न सत्य साधनाके ही लिये। मायाके इस भ्रामक प्रदेशमें आकर जो सत्य स्वरूप विस्मृत कर दिया गया है, उसीको प्राप्त करके निस्पृह और निरामय होकर सांसारिक आचरण करते हुये लीला करना और अपनी इच्छाको —पवित्र और निष्कलुष इच्छाको—ही सर्वोत्कृष्ट स्थान देना सर्वोत्तम संस्थिति है। अपने आपको बिना पहचाने हुए मनुष्य जो कुछ भी करेगा वह अज्ञान-मूलक होनेके कारण कभी भी श्रेयस्कर होनेका नहीं। आनन्दके स्थानपर उसे दुःख की ही प्राप्ति होगी। अतः जीवनका—मर्त्यलोकके, अधिवासियोंके जीवनका—सर्वप्रथम उद्देश्य सत्य ज्ञानकी प्राप्ति है, तदुपरान्त इच्छानुकूल आचरण और विचरण। सारी चिन्ताएं, सारा दुःख-दैन्य, अज्ञान और भ्रमके ही कारण समुत्पन्न होता है। ज्ञानके भास्करके समक्ष पराधीनता—किसी अदृश्य महीयान शक्तिकी परमुखापेक्षिता—के तिमिरका अस्तित्व नहीं रह जाता। निखिल विश्व ब्रह्माण्डकी विरचना अपने उस आनन्दको दुःखके सम्मिश्रमसे अधिक महत्त्वपूर्ण बनाना है जो उसका निज स्वरू है।

विश्वके अनगिनती अन्य लोकोंमें कोई ऐसा लोक है या नहीं जहांके अधिवासी इस पृथ्वीके अधवासियोंसे अधिक उन्नत होकर माया विरहित होकर, आचरण करते हैं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जाकर भी निश्चय ही है! दुःख, दैन्य, क्लैव्य इत्यादि दुर्वल मस्तिष्ककी मिथ्या भावनाओंसे सम्बन्ध रखते हैं। चिन्ताशीलता मानवताको अन्धकारके गर्त्तमें डालकर हर्ष विरहित कर डालती है। स्वर्ग और नरककी सम्भावना तभी स्वीकृत हो सकती है, जब वे इच्छानुकूल देखने योग्य स्थान हों, न कि कृतकर्म्मानुकूल प्रेषणीय स्थान।'

आनन्दमें सृष्टि उत्पन्न होती है, आनन्दमें ही लय। आनन्दी संसारमें जीवनकी अमूल्य घड़ियोंकी उपयोगिता न समझ मानव कृत्रिमताके विकराल चक्रमें पड़ क्षणिक आनन्दमें लीन हो जाता है और उस परमानन्दको भूल जाता है जिसे प्राप्तकर उसका जीवन सफल होसकता है। इस प्रकार उसका होजाता है विनाश। मायाकी वारुणी पीकर अभागा मानव अपनेको दुर्वल समझकर नाना प्रकार के पथभ्रष्टकर कृत्योंमें संलग्न होता है, चिन्तित और म्लान मुख होकर कभी इहलौकिक विषयोंकी ओर प्रधावित होता है कभी पारलौकिक विषयोंकी ओर। जब मायाकी मदिराका नशा टूट जाताहै और अपने स्वरूपकी पहचान साधकको हो जाती है तो उसके मुखसे निकल पड़ता है—'शिवोऽहम् शिवोऽहम्!'

चांदनी रातका वह सुधांशु भी जो उस साधकके आरम्भिक दिवसोंमें कभी उसकी विप्रयोग वेदनाको बढ़ाता था और कभी

उसकी वासनाको उद्दीप्त करता था, अब उसीके स्वरमें स्वर मिलाकर कहने लगता है—'शिवोऽहम्, शिवोऽहम् !'

सूर्य्य, नक्षत्र, वृक्ष, पशु पक्षी सब मधुर स्वरमें कहने लगते हैं—'शिवोऽहम् शिवोऽहम् !'

उद्देश्य-वैपरीत्य

मानव दौड़ना चाहता था प्रकाशकी ओर, लेकिन पहुंचा अन्धकारकी ओर! चाहा था पुष्प-संकुल सुरम्य वन-वीथिकामें विश्राम करना, किन्तु मिला कण्टकोंसे आकीर्ण वन्धुर मार्ग!

विश्व ब्रह्माण्डके एक नगण्य सौर मण्डलके छोटसे मत्य-लोकपर निवास करनेवाली मानव जातिने अपनी सृष्टिके आरम्भसे ही सुख और शान्तिकी सफल व्यवस्था करनेका प्रयत्न आरम्भ किया और वह श्रोतस्विनीकी गतिकी भांति कभी उत्थित एवं अभ्युदित और कभी पतित होती हुई इस विश शताब्दिमें एक ऐसे स्थानपर जा पहुंची है, जहांसे उसके अतीत और वर्त्तमानके कतिपय उद्देश्य-वैपरीत्योंको अच्छी तरहसे देखा जा सकता है। जीवनको सुख एवं शान्तिके साथ व्यतीत करते हुये अपने चरम सत्य, अपने परम कल्याणकी प्राप्ति करनेके लिये पृथ्वीके विभिन्न भागोंमें तत्त्ववेत्ताओंने जिन नियमोंकी व्यवस्था की थी. कालान्तरमें उनकी कैसी दुरवस्था और विकृति हुई, यह मानव-सभ्यताके इति-हासके अध्ययनसे अच्छी तरह अवगत हो सकता है। अभ्युदय और निश्रेयसकी प्राप्ति-कामनासे कर्म्म-पथपर गतिशील मानव-जातिका एक विशाल समूह अपने उद्देश्यको अज्ञानतासे विस्मृत कर गया और उन्हीं बातोंके प्रतिकूल आचरण करने लगा जो उसकी लक्ष्य-प्राप्तिमें सहायिका है।

अपने क्षुद्र अस्तित्वपर—विशाल विश्वके छोटेसे स्थलपर रहने वाला मानव जब अपने अर्थहीन क्षणभंगुर अस्तित्वपर—दार्शनिक दृष्टि—निक्षेप करता है, जब वह चन्द्रार्क-सुशोभित ज्योतिपथके अगणित ज्योतिष्कोंपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करता और अपने मर्त्यलोकके इस क्षणिक क्षुद्र आवासको देखता है तब लज्जासे अपनी लघुताके विचारसे, उसका मस्तक अवनत हो जाता है। द्रुतगतिसे प्रधावित होते हुए समयको—चतुर्दिक परिव्याप्त अज्ञानान्धकारको—अन्वेषणकी परिमित शक्तियोंको देखकर वह रो उठता है; उसकी निराशामयी रोदन-ध्वनियोंसे सारा वनान्त आक्रन्दित हो उठता है। जब बुद्धि रहस्योद्घाटनमें असमर्थ होकर निष्क्रिय सी हो जाती है, तब वह कल्पना-रूपसीके नृत्यशील चरणोंकी नूपुर-झंकार सुनता हुआ अग्रसर होता है; मिथ्याको त्यागकर सत्यकी ओर क्षणभंगुरको त्याग कर अविनश्वर एवँ शाश्वतकी ओर उद्ग्रीव होता है।

आजसे शत सहस्र वर्ष पहले भी पृथ्वीके विभिन्न भागोंके दार्शनिकोंने 'सत्य, शिव, सुन्दर' को प्राप्त करनेके लिये विभिन्न सिद्धान्तोंकी स्थापना की थी। अपनी परिपार्श्विक स्थितियोंसे—अपने परिवेषोंसे—प्रभावित होकर नाना प्रकारके मत मतान्तरोंका प्रचलन किया था। सत्य-जिज्ञासु प्रातःस्मरणीय ऋषियोंने 'ऋते-ज्ञानान्न मुक्ति' कहकर जब वैराग्य और अनासक्तिका महत्व प्रतिपादित किया था, तब अज्ञानान्धकारमें इतस्ततः भटकते हुए प्राणियों के लिये उन्होंने मूर्त्तिपूजाकी भी व्यवस्था की। 'सत्य, शिव सुन्दर'

की उपासनाका साधारण प्राणियोंके लिए कोई अर्थ नहीं, जब तक कि वे उसे अपने सदृश हो साकार और सगुण न समझें। मनीषियोंने उसी सत्य-प्राप्तिके उद्देश्यको सम्मुखीन रखते हुये प्रतीकोपासनाकी व्यवस्था की। जिस 'सत्य, शिव, सुन्दर' की झलक पा लेनेके लिये तपस्वियोंने समस्त सांसारिक भोगोंसे पराङ्मुख हो कर कान्तार विजनमें रहकर साधना आरम्भ की थी, उसीकी प्राप्ति की अत्यन्त सरल विधियोंको उन्होंने सर्वसाधारणके सामने रखा। प्रेमियोंने ईश्वरको प्रेम-पुञ्ज देखा; वीरोंने उसे शौर्य्यमय रूपमें ग्रहण किया; भीति-निपीड़ित प्राणियोंने उसे दण्डदाता और कठोर स्वभाव वालेके रूपमें देखा। अपनी-अपनी प्रवृत्तियोंके अनुसार, अपनी अपनी रुचिके अनुकूल पूर्णत्वको प्राप्त समझकर उन्होंने उसकी उपासना आरम्भ की, जिसे सत्य-जिज्ञासु दार्शनिक 'सत्य. शिव, सुन्दर' से अभिहित करते हैं।

किन्तु उपकार करनेवाली वस्तु भी कुपात्रके हाथोंमें पड़कर अपकार ही करती है। चिरन्तन शांति और अक्षय आनन्दकी प्राप्तिके उद्देश्यको विस्मृत करके .साधारण अदार्शनिक मानव-समूह ने पारस्परिक संघर्षणमें ही अपनी इतिकर्त्तव्यता समझ ली। किसी ने छलसे, किसीने खड्गहस्त हो कर, किसीने स्वर्ण-मुद्राओंसे अपने विशिष्ट गुण सम्पन्न उपास्य देवताकी पूजाका, आराधनाका प्रचार करना आरम्भ किया और स्वतंत्र विचार शक्तिका ह्रास होता गया। भारतवर्षमें तो नहीं पर पाश्चात्य संसारमें यह विशेष रूपसे दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्र विचारकोंको कितने-कितने अमानु-

षिक अत्याचार सहन करने पड़े थे, यह पाश्चात्य मध्यकालीन दार्शनिकोंके जीवनके अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है।

संसारके परिवर्त्तनशील, क्षणभंगुर, मिथ्या, अज्ञानावृत स्वरूपको देखकर दार्शनिकोंने यहांके वैभव-विलासको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हुए जिस 'सत्य, शिव, सुन्दर' को मर्त्यलोकके निवासियोंके सामने ला रखा था,कालान्तरमें उस 'सत्य, शिव, सुन्दर' की आराधनाकी विकृत प्रणालियोंने कल्याणके स्थानपर मनुष्यको पतनोन्मुख किया; अभागेको अजस्र आनंदके बदले नित्य नव दुर्भावनाओंकी प्राप्ति हुई!

मानव ज्ञातिके उपकारार्थ ऋषि महर्षियोंने जिस प्रेम-और इसी प्रकारके अनेकानेक सुधा वालेका ज्ञान पृथ्वीके निवासियोंके सामने रखा, उसीका आश्रय लेकर नित्य नवीन उत्पीड़नोंकी सृष्टि होने लगी।

निश्रेयसकी प्राप्तिमें जो उद्देश्य वैपरीत्य सङ्घटित हुआ है, वही सान्सारिक अभ्युदयकी प्राप्तिमें भी। सामाजिक विश्रृङ्खलता को अपाकृत करके सुस्थव्यवस्थाकी स्थापना करनेके लिये आजसे शत सहस्र वर्ष पहले मर्त्यलोकके निवासियोंने अपनेमें-से सर्व-सुयोग्य व्यक्तिको पथ प्रदर्शक निर्वाचित करनेकी प्रथाका आविष्करण किया था। आरम्भमें—इस प्रथाके पहले—न तो राजा होते थे; न राज्य, न दण्ड-विधान था, न कोई दण्ड दाता; प्रजा धार्मिक नियमोंका अनुवर्तन किया करती थी।

नैव राज्यं न राजासीन्न दण्डो न च दण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षतिस्म परस्परम्॥

सर्वोत्कृष्ट व्यक्तिको, जो बल और बुद्धि दोनोंमें प्रशंससीय हो, प्रजा अपना राजा निर्वाचित करती थी। राज्य-प्रथाके उषाकालमें यह पद बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण और कष्टमय समझा जाता है। विचारशील दार्शनिकोंकी सहायतासे निर्वाचित राजागण राज्य-कार्य्य सञ्चालित करते थे। पुराणों और रामायण महाभारतादिक ग्रन्थोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कि पुरातन कालमें नृपति गण अपनेको सर्वाधिकार सम्पन्न समझकर अधीनस्थ प्राणियोंको उत्पीड़ित करनेके स्थानपर अपना समस्त जीवन उनके हित चिन्तनमें ही व्यतीत किया करते थे। सारे समाजको सुखी और सुरक्षित रखते हुए अपने जीवन निर्वाहके योग्य सामग्री ग्रहण करना ही वे अपना कर्तव्य समझते थे। प्रजातन्त्रकी अपेक्षा जिसमें कभी-कभी विभिन्न व्यक्तियोंके पारस्परिक वैमनस्यके कारण विश्रृङ्खलताकी सम्भावना रहती थी, मनुष्योंने राजतन्त्रको अधिक उपयुक्त समझा।

लेकिन बादके इतिहासमें वर्णित नृपतियोंका आचरण उद्देश्य वैपरीत्यका ज्वलन्त उदाहरण है। प्रजाको बुभुक्षित रखकर नाना प्रकारके सुस्वादु भोजनोंसे अपनेको तृप्त करना, प्रजाको नग्न मलीन रखकर स्वयं बहुमूल्य वस्त्रोंका परिधान करना, हर्म्य निवासी बनकर प्रजाके जीर्ण—शीर्ण कुटीरोंपर निदारुण अत्याचार करना राजाओंका स्वभाव हो गया। प्रजाकी सुख समृद्धिके लिये की गई

थी राजतन्त्रकी स्थापना, पर मिली निदारुण उत्पीड़ना, सुव्यवस्था और सुरक्षाके बदले मिला घोर तिरस्कार! रोमके नीरोंका आचरण, रूसके जारकी क्रूरताएं, फ्रान्सके चौदहवें लुईके अत्याचार इतिहास प्रेमियोंसे अनवगतत नहीं।

सर्वहारा-दलका रणनिर्घोष

रणभेरी बज उठी है। सर्वहारा-दलका सेनानी ललकार उठा है। सर्वनाशके योद्धा रणांगणमें खड़े होकर शंखनाद कर रहे हैं। देखें, अब कबतक महलोंमें "अंधेरी है रात सजन रहियो कि जैहों" के गीत गाये जाते हैं। देखें अब कबतक मजलूमोंके खूनको चूसनेमें ये पूंजीपति समर्थ हो सकते हैं। महा-नाश पूंजीवाद और साम्राज्यवादके आधारपर निर्मित किये गये सभ्यताके दुर्गका आह्वान कर रहा है। देखें, कबतक वदमाशोंके हथ-कंडे इसकी रक्षा कर सकते हैं।

संसारके चिन्ताशील मनीषियोंने अपनी अहर्निशकी साधनासे समुद्भूत ज्ञानके प्रकाशको निपीड़ित मानव समाजके अज्ञान तिमिराच्छन्न अन्तर्देशमें विकीर्ण करके यह बतला दिया है कि जबतक संसारके समस्त बुभुक्षित वस्त्रहीन एवं गृहहीन मानव अपने प्राणोंकी समस्त शक्तियोंके साथ शोषक दलके विरुद्ध महाभियान न करेंगे तबतक संसारका वर्तमान कुत्सित घृणित एवं नरकोपम रूप नहीं विनष्ट हो सकता।

अबतक पूंजी पतियों एवं अन्य सुखी वर्गके द्वारा प्रचारित मिथ्या .आध्यात्मिक एवं धार्मिक सिद्धान्तोंके कलपित प्रभावसे विपन्न होकर सर्वहारा-दल मौन खड़ा था। इसके प्राणोंमें दर्द जरूर था मगर वह उसको छिपानेकी प्रचेष्टाओंमें निरत था। इसके हृदयमें क्रन्दन छिपा हुआ था किन्तु वह उसे अर्थहीन एवं निरस मुसकिराहटके भीने आवरणमें आवरित रख रहा था। उसकी आंखोंमें कोपकी ज्वाला थी। किन्तु शोषक वर्गके प्रति नहीं, वल्कि अपने ही क्षुद्र अस्तित्वके प्रति। वह जिन्दगीकी कटीली राहमें खड़ा-खड़ा सिसक रहा था। फुलोंपर चलकर वैभवके देवताका स्वागत करनेवाले उसको देख देखकर हंस रहे थे। वह पावसके उदास दिनोंमें अपनी झोंपड़ीमें वैठकर उस दिनकी

प्रतीक्षा किया करता था जब मृत्युका अन्धकार जीवनके प्रकाशको अपनेमें समाविष्ट कर लेता है। ऊँचे ऊँचे प्रासादोंमें निवास करनेवालोंके सुरभित सुषमित कमरोंसे रूपाजीवाओंके कोकिल कोमल कण्ठोंकी आवाज उसके हृदयको और भी ज्यादा व्यथातुर कर देती है।

लेकिन अब उसे मौन होकर जीवनके कण्टकाकीर्ण पथमें खड़ा रहना अच्छा नहीं लगता। कुटीरके एक कोनेमें बैठकर अब वह सिसकना नहीं चाहता। अपने प्राणोंके गुरू गम्भीर क्रन्दनको शोषक वर्गको सुनाकर वह अपनी दुर्बलता अब नहीं प्रकट करेगा। उसे अपनी शक्तियोंका ज्ञान होगया है। वह यह जान गया है कि वह क्या है और वह क्या कर सकता है? अब वह मौन नहीं है उसकी आवाज—तेजोद्दीप आवाज—प्राचीसे लेकर प्रातीचीतक गूंज रही है। वह अब सिसकता नहीं है। उसकी गर्जना—उसके नेत्रोंकी कोपवह्नि निखिल वसुन्धरामें परिव्याप्त हो रही है। संसारका वातावरण उसके प्रलयंकर सङ्कल्पोंसे विकम्पित हो उठा है।

हाँ, आजका सर्वहारादल दुर्बल नहीं, भीत कातर नहीं, वह नूतन शक्तियोंसे युक्त होकर अभिनव कर्मोन्मदनासे प्रेरित होकर संसारकी समस्त अत्याचार करने वाली शक्तियोंके विरुद्ध रण-निर्घोष कर उठा है।

गगनको चूमनेका प्रयास करनेवाले प्रासादोंमें कानाफूसी हो रही है—"अब क्या होगा?" दूसरोंके श्रमसे उपार्जित द्रव्यको अन्यायपूर्वक हस्तगत करके गुलछर्रे उड़ाने वाले धनपति एक उष्ण

निश्वास छोड़ते हुए कह रहे हैं, "अब क्या होगा ?" उनके हृदयमें भय समा गया है।

ये प्रपञ्चप्रवीण अपनी समस्त शक्तियोंके द्वारा इस बातका प्रयास करेंगे कि क्रांतिकी यह महावह्नि प्रशमित हो जाय —विप्लव की ये सघन श्यामवारिद-मालायें केवल गर्जन तर्जन करके ही विलुप्त हो जायें। किन्तु ऐसा नहीं होने का। क्रांतिकी इस महा-वह्निमें—कोटि कोटि बुभुक्षित एवं वस्त्रहीन मानवोंके हृदयमें निशिवासर जलनेवाले असन्तोषके इस हुताशनमें उनकी कुत्सित सत्ताका विनाश होकर रहेगा। विप्लवकी ये प्रलयंकर वारिद-मालायें केवल गर्जन तर्जन करके ही विलुप्त नहीं होंगी। इनका उग्रजलवर्षण समस्त मानव-जातिको आप्लावित कर डालेगा। मानवी सभ्यता और संस्कृतिको शताब्दियोंसे कलंकित किये रखने वाली समस्त क्षुद्र सतायें अस्तित्वहीन हो जायेगी।

चैतन्योदय आज नहीं कई वर्ष पहले ही हो चुका है। रूस और फ्रांसकी राज्यक्रांतियां साम्यतिक इतिहासके विद्यार्थियोंसे अनवगत नही है। जारके अमानुषिक अत्याचारोंसे रूसकी जनता संत्रस्त रहती थी। स्वतन्त्रता नामकी कोई चीज वहां नहीं रह गई थी। कतिपय इने गिने पूंजीपतियों एवं उच्चपदस्थ सरकारी कर्म-चारियोंको छोड़कर शेष सभी निपीड़ित थे। कृषकों, जुलाहों, लेखकों, सम्पादकों एवं इसी प्रकारके अन्य श्रमजीवियोंका जीवन मरुस्थलीकी रेतीली जमीनसे ज्यादा दाहक हो उठा था। किन्तु यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रह सकी,—मानवताके प्रांगणमें

दानवताका ताण्डव ज्यादा दिनों तक नहीं हो पाया। वर्षों तक सोया हुआ अजगर जिस प्रकार किसीके द्वारा स्पर्शित होकर एकाएक फुंफकार उठता है उसी प्रकार रूसका सर्वहारा दल अपनी शताब्दियोंकी निद्रा त्यागकर फुफकार उठा। उसने अपनी शक्तियोंको पहचाना। अत्याचारियोंके शक्तिके उद्गम स्थलको एवं उसके वास्तविक स्वरूपको पहचाना। ऐक्यसूत्रमें आबद्ध होकर भीम-भयानक स्वरमें उसका रणनिर्घोष हुआ। अत्याचरियोंका हृदय हिल उठा। पूंजीवाद और साम्राज्यवाद सर्वहारा दलके इस भीषण एवं सुन्दर रणाभियानमें पड़कर विनाशके न जाने किस अंधकारित गर्तमें विलुप्त हो गये। इसी प्रकार फ्रांसमें भी भीषण विप्लव का सूत्रपात हुआ था। स्पेनमें जो हुआ वह भी इतिहासके विद्यार्थियोंसे छिपा हुआ नहीं है। संसारके बहुतसे ऐसे भाग हैं जहां पर शोषकवर्गने अपनी सोयी हुई शक्तियोंको जगाया है और मानवताके इस अभिनव जागरणके द्वारा इतिहासके कतिपय पृष्ठोंको बहुत ही सुन्दर रूप प्रदान किया है।

हां, सर्वहारा दलका रणनिर्घोष कोई नवीन घटना नहीं! केवल ऐक्यसूत्रमें आबद्ध होकर—पृथ्वीके समस्त श्रमजीवियोंका संगठित रूपमें शोषकवर्गके प्रति महाभियान करना अब अवशिष्ट रह गया है। शोषितोंकी न तो कोई जाति है, न कोई धर्म है, न कोई देश है। उनकी जाति है मानवता, उनका धर्म है मानवता, और उनका देश है यह पृथ्वी।

(२)

कवि अपने कुटीरसे बाहर निकलकर अपने स्वप्नलोकमें—निवास करनेवाले साकीसे विदाग्रहण करके—अपनी कल्पनाके कोमल आलबालमें उत्पन्न होनेवाले संसारको परित्यक्त करके वास्तविक जगत्‌के कठोर रणक्षेत्रमें आखड़ा हुआ है। अब वह अपने अन्तर्देशके देवताकी मनुहार नहीं करेगा, अपनी भावनाओंके साथ प्रभातकालीन विहगकी तरह हीन नहीं होगा। उसने इच्छाओंके मद्यपात्रको चकनाचूर करके—स्नेहकी दीवारको भग्न करके कण्टकाकीर्णपथमें पैर रख दिया है और संसारके समस्त शोषित वर्गके प्रति गुरु गम्भीर वाणीमें कह रहा है—"ओ शताब्दियोंसे निपीड़ित मानवता! निर्भय होकर हृदयमें अशेष विश्वासका पोषण करते हुये आगे बढ़ती चलो। तुम्हारी मंजिल तुम्हें आमंत्रित कर रही है। प्रकाशका देवता तुम्हारे मार्गमें किरणें वितरित करनेके लिये कबसे तैयार खड़ा है। अपने हृदयके रक्तसे उसका स्वागत करो।

अपनी गवेषणाशालामें अहर्निश चिन्ताशील होकर बैठे रहनेवाला तपस्वी वैज्ञानिक आज एकाएक अपनी चिरशांतिको भंग करके बाहर आ खड़ा हुआ है। उसके एक हाथमें उसकी साधनाके द्वारा उपार्जित वे शक्तियां हैं जिनके द्वारा मानव जातिका क्षण भरमें विनाश साधन हो सकता है और दूसरे हाथमें वे शक्तियां जिनके द्वारा पृथ्वीको स्वर्गोपम बनाया जा सकता है। मानव-जातिके प्रगतिपथमें शताब्दियोंसे रोड़े अटकानेवाले पूंजीवाद और साम्राज्यवादकी जड़पर कुठाराघात करनेवाले विप्लवी दलको वह आशा-

न्वित दृष्टिसे देख रहा है। वह विप्लवी दलकी कल्याण-कामना करता हुआ उसके पथ प्रदर्शनको तैयार खड़ा है।

एक नहीं संसारके समस्त कलाकार—पार्थिव अस्तित्वकी उपेक्षा करके एक काल्पनिक जगतका निर्माण करके उसीमें निवास करने वाले समस्त स्वप्नोंको छोड़कर विप्लवी दलमें एक एक करके शामिल हो चले हैं। स्कूलोंमें जानेवाले विद्यार्थियोंसे लेकर आफिसमें बैठकर कलम घिसनेवाले बूढ़े क्लर्क तक सभीके प्राणोंमें असंतोषकी महावह्नि प्रज्वलित हो उठी है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन करनेकी आकांक्षासे प्रत्येक व्यक्ति आज अनुप्राणित हो रहा है। केवल कतिपय इने गिने कमीने पूंजीपति और उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारी ही इसके अपवाद हैं।

(३)

सचमुच कितना सुन्दर है सर्वहारा दलका यह रणाभियान!

किसीके हाथमें हंसिया है, किसीके हाथमें हथौड़ा जिसको जो मिल रहा है वही लेकर वह दौड़ा आरहा है। इन दीवानोंका स्फीत वक्षः स्थल न जाने किस उज्ज्वल भविष्यकी गौरवागरिमामयी आभासे आलोकित हो उठा है। वर्षोंकी बुभुक्षा और दन्य विप्लवके इस अभिनव जोशमें न जाने कहां खो गये हैं। सबोंके प्राणोंमें एक ही भावना है—"क्रान्ति।" सबोंके मुखमें एक ही वाणी है—"क्रांति"।

प्रलयकी ज्वालाओंमें

प्रलयकी ज्वालाओंमें अबाध गतिसे विचरण करनेवाले विप्लवी दलकी ओर पृथ्वी के समस्त वैज्ञनिक—अपने जविनको निदारुण तपस्या और घोर साधनाके चरणों पर निवेदित करनेवाले समस्त महामनीषी आशापूर्ण दृष्टिसे देख रहे हैं। कवियोंका भविष्य स्वप्न इसी विप्लवदिलकी गतिविधियोंमें केन्द्रित है। गायकोंके अन्तर्देशकी प्रत्येक हिलोर इस विप्लवीदलके पदनिक्षेपकी अनुवर्तन करती है।

पूंजीवाद और साम्राज्यवादकी जड़पर अग्निस्फुलिंगोंका वर्षण करनेवाले इस विप्लवी दलपर ही मानव-जातिके भविष्यकी उज्वलता या कालिमा आश्रित है।

विंश शताब्दिका दार्शनिक अब अपने जीवनके समस्त क्लेशोंके लिये सृष्टिकी सञ्चालिका शक्तिको दोषी नहीं बनाता। वह अपनी परिस्थितियोंको प्रतिकूल पाकर—अपनी महात्त्वाकांक्षाओंको विनाशके क्रोड़में विमूर्छित होता देखकर अपने पूर्व जन्मके कुकृत्योंपर आंसू नहीं बहाता। एक ओर विशाल गगन-चुम्बी प्रासादको देखकर और दूसरी ओर पावस मासमें भीति-प्रकम्पित होनेवाले कुटीरको देखकर वह दोनोंके भाग्यदेवतापर दोषारोपण नहीं करता। नाना प्रकारके उपादानोंसे सुसज्जित उशीर सुवासित कमरोंमें बैठकर प्रेमालाप करनेवालोंके आफिसमें दिनभर परिश्रम करनेवाले श्रमजीवियोंको देखकर वह यह नहीं कहता कि ईश्वर अन्यायी है या यह भाग्यके देवताका बुद्धिविपर्यय है। वह इस बातको वर्षोंकी साधना एवं चिन्तनाके उपरान्त अच्छी तरह जान गया है कि वर्तमान मानव-समाजके अधिकांश सदस्योंके जीवनके हाहारवका—उनके दुःखोंका—उनकी प्रतिदैनिक विपत्तियोंका—उनकी समस्त महात्वाकांक्षाओंके बलिदानका प्रमुख कारण वर्तमान सामाजिक व्यवस्था है; जिसमें एक ओर तो विना श्रम किये ही आनन्दोपभोग करनेवाले पूंजीपति हैं और दूसरी ओर अहर्निश परिश्रम करके भी अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ होनेवाले श्रमिक हैं।

लेकिन सत्यको अपने सामने इतने स्पष्ट रूपमें देखकर भी दुनियांमें अधिक संख्या ऐसे ही दार्शनिकोंकी है, जो पूंजीपतियोंके आश्रित रहनेके कारण मिथ्या विश्वासोंका ही प्रचार श्रेयस्कर-समझते हैं। बेकारीके—योग्य व्यक्तियोंकी निराशाके—होनहार प्रतिभाशाली नवयुवकोंकी आत्म-हत्याओंके वास्तविक कारणोंपर जबतक ध्यान नहीं दिया जायगा और उनको विदूरित करनेका प्रयास नहीं किया जायगा, तबतक पृथ्वीके अधिवासियोंके लिये सुख और आनन्दकी उपलब्धि असम्भव है। बुभुक्षितोंको भोजन देनेके लिये—निवस्त्र मानवोंको वस्त्र प्रदान करनेके लिये—निपीड़ितोंको सुखी करनेके लिये इस मर्त्यलोकमें जो-जो प्रयत्न हो रहे हैं, वे तब तक व्यर्थ हैं, जबतक कि "योग्यताके अनुसार श्रम और आवश्यकताके अनुसार वितरण" के सिद्धान्तका प्रचलन नहीं हो जाता।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें जिस प्रकारके विपर्यय दृष्टि-गोचर होते हैं वे आश्चर्यजनक तो हैं ही साथ-ही-साथ मानव-जातिके मस्तिष्क-दौर्बल्यके भी सूचक हैं। जिन महामनीषियोंके अनवरत परिश्रमसे रात्रिन्दिवकी घोर साधनासे सभ्यताका पथ प्रशस्त होता है, वे ही वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें अत्यन्त क्लेशित जीवन व्यतीत करते हैं। मानवजातिकी उदर पूर्त्ति करनेवाले कृषकोंकी बात तो जाने दीजिये, उन कलाकारोंकी ओर देखिये जिनकी प्रतिभासे मानवी सभ्यता चमत्कृत होती आई है। कितना दुःख—कितना विषाद बिखरा पड़ा है उनके जीवनमें। उनका

मानवी अस्तित्व कितना व्यथाकुल हो गया है! न जानें कितनी कठोर तपस्याके उपरान्त,—घोर तथा निर्मम साधनाके उपरान्त वैज्ञानिक कोई नवीन आविष्कार कर पाता है। प्रभातकी जागृति वेलासे लेकर सन्ध्याकी अलस, मंदिर घड़ियों तक वह अविराम अपनी प्रयोगशालामें नाना प्रकारकी चेष्टाएं करता रहता है। शरद हो, ग्रीष्म हो. वर्षा हो,---उसे कोई चिन्ता नहीं। वह तो सब कुछ भूलकर, बाह्य जगतसे सारा सम्बन्ध विछिन्न करके नूतन आविष्कारोंके लिये प्रचेष्टाएं करता रहता है। प्राणोंकी सारी आकांक्षायें, हृदयकी सारी आवेग-प्रवेगमयी अभिलाषायें पूंजीभूत होकर उसे उसके महदुद्देश्यके लिये उत्प्रेरित करती रहती हैं। जब सारा संसार निद्राके क्रोड़में स्वप्नोंकी बारुणी पीकर झूमता रहता है, उस समय वह एकाकी अपनी प्रयोगशालामें बैठा हुआ न जानें कितनी-कितनी गम्भीर चिन्तनाओंमें निमग्न रहता है। प्रातःकालकी प्राथमिक रश्मियां वातायनकी राहसे प्रवेश करती हैं, लेकिन उसकी तन्मयता भङ्ग नहीं होती। कितनी अटूट कितनी अविच्छेद तपस्या है यह !! जीवनमें अन्य कोई लालसा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई कामना नहीं। एकमात्र लालसा, एक मात्र आकांक्षा, एकमात्र कामना उसकी रहती है अपने विशिष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति। जीवनका सारा सुख—बाह्य संसारके समस्त प्रलोभन उसके चरणोंसे ठुकरा दिये जाते हैं।

लेकिन उसकी घोर तपस्याका, रात्रि दिवसकी ऐकान्तिक साधनका परिणाम क्या होता है? जिन आविष्कारोंके लिये

तपस्वी वैज्ञानिकने अपने जीवनको कठोर संयमोंसे पूर्ण कर डाला था, उनके द्वारा मानव जातिके आवासस्थल इस मर्त्यलोकमें क्या-क्या कृत्य किये जाते हैं? वैज्ञानिककी जिस महा प्रतिभासे समुद्भूत आविष्कारोंके द्वारा यह पृथ्वी स्वर्गोपम हुई होती, उसको कुण्ठित करनेके लिये प्रपंचप्रवीण पूंजीपतियोंके द्वारा न जानें कितने कुचक्र रचे जाते हैं। उसके पथमें न जानें कितने-कितने कण्टक बिखेरे जाते हैं। संसारमें अबतक जितने वैज्ञानिक हुए हैं उनके जीवनको स्पष्टतया अध्ययन करनेसे यह पता चल जाता है कि कितना अभाव कितना दुःख उनके जीवनके कण-कणमें बिखरा पड़ा है। सर्वथा निर्लोभी होकर मानवी सभ्यताको उन्नत करनेके लिये उनलोगोंने जिन यन्त्रोंका आविष्कार किया था उनको भी तत्कालीन अधिकारी वर्गने हस्तगत करके किस प्रकार उनके जीवनको विपन्न कर दिया था यह अध्ययनशील व्यक्तियोंसे अनवगत नहीं है। इसी प्रकार संसारके समस्त साहित्यिकोंको भी इसी प्रकारके अगणित कष्ट झेलने पड़े हैं। देश निर्वासन, कारावासकी अन्धेरी कोठरियां, ये तो साधारण दण्ड हैं। उन्हें ज्यादातर विषके प्यालों और फांसीके तख्तोंसे सत्कृत किया गया है। विदेशोंमें तो खैर इस दिशामें धीरे-धीरे कुछ तरक्की भी हो रही है। किन्तु भारतवर्ष हतभाग्य साहित्यिकोंकी दशा देखकर हृदय क्रन्दन कर उठता है। यहांपर साहित्यिकोंको पग-पगपर अपमानोंका—सर्वतोमुखी अवहेलनाओंका सम्मुखीन होना पड़ता है।

अब दूसरी ओर देखिये। मानवी सभ्यताको समुन्नत करने

वाले व्यक्तियोंकी तो यह हालत है। मानव जातिकी उदरपूर्ति करने वाले—उसके अस्तित्वको सुरक्षित रखनेवाले कृषक तो इस तरह तड़प रहे हैं। सभ्यताको नित्य नवीन अवदानोंसे समुज्ज्वल करने वाले व्यक्तियोंकी जिन्दगीमें तो इस तरह हाहाकार बिखरा पड़ा है। और दूसरी ओर प्रासादोंमें गुलछर्रे उड़ रहे हैं। तवायफोंके नाच और गाने होते हैं। नाना प्रकारके सुस्वादु पक्वानोंसे जिह्वाको प्रसन्न किया जाता है। कल्पनाकी ऊंचीसे ऊंची हिलोरको छूकर जीवनमें राशि-राशि उन्माद बिखेरनेवाला प्रतिभाशाली कवि तो अपने ही एकाकीपनमें विक्षुब्ध होकर तड़पता रहता है। और उधर प्रासादोंके रत्नदीपोज्ज्वल वातायन पथसे नूपूरोंकी आवाज आती है—नैश तिमिरको चीरती हुई आवाज आती है--"बालम आन बसो मोरे मनमें।" आखिर ऐसा क्यों है? वे—और ऐसा कबतक होता रहेगा? मानव-जातिके वासस्थल इस क्षुद्र ग्रहमें अविचारिताका यह ताण्डव अब और कितने दिनोंतक होता रहेगा? इस विपर्ययका जो प्रधान कारण है उस पर तो अबतक काफी प्रकाश डाला जा चुका है।

समाजमें जितनी भी सुविधाये हैं, सब इन पूंजीपतियोंको प्राप्त हैं। योग्यता इनमें भले ही धेले भर भी न हो और शिक्षाके नाम पर भले ही ये निरक्षर भट्टाचार्य ही क्यों न हों, पर बड़ीसे बड़ी और प्रसिद्ध सभाओंके ये सभापति बनते हैं, दूसरोंसे पुस्तकें लिखा कर स्वयं उसके लेखक बन जाते हैं। बड़ासे बड़ा साहित्यिक छोटेसे छोटे पूंजीपतिके सामने वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें तुच्छ समझा जाता है। आप बड़ेसे बड़े कवि आप हों, आपकी कल्पना शक्ति

गगनकी श्वेत-श्यामल जलमालाओंको चूमती हों, आपकी हृत्तन्त्रीसे विश्वविमोहन संगीत विनिःसृत होता हो, किन्तु इतना होनेपर भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें आपका कोई स्थान नहीं। अपनी उदरपूर्तिके लिये आपको किसी न किसी रूपमें पूंजीपतियोंका कृपाकांक्षी होना ही पड़ेगा। माना,आपकी लेखनीमें गजबकी ताकत है, आपकी लेखन शैली मानसको चमत्कृत कर देती है,—हृदयको चंकित करके कंपा डालती है मगर यह सब कुछ होने पर भी आप न तो इच्छानुसार भोजन ही कर पाते हैं और न अपने मस्तिष्कको उचित खुराक ही दे पाते हैं! वैज्ञानिकोंने गम्भीर चिन्तनके द्वारा,—अहर्निशकी तपस्याके द्वारा मानव समाजके सुख-सौविध्यमें काफी वृद्धि की; मगर उससे आपको क्या लाभ? समग्र सुख सुविधायें अधुनातन समाजमें उन्हींको उपलब्ध हैं, जिनके घरमें पूंजी है।

यह तो निश्चित है कि ऐसी अवस्था अधिक दिनोंतक नहीं रह सकती। मानव जातिके अधिकांश व्यक्ति अब दुःखी हैं, शोषित हैं। उन्नति और वास्तविक जीवनके समस्त अधिकारोंसे वंचित हैं! उनमें असन्तोपकी महावह्नि प्रज्वलित हो चली है। उसकी कई लपटोंने तो प्रकट होकर पृथ्वीके कई तख्तोंको उलट दिया कई स्थानोंपर महाक्रांति उपस्थित कर दी! आज बीस वर्ष पहले रूसमें यही लपट प्रकट हुई थी, जिसने सारे रूसको कायापलट कर दी, रूस ही नहीं, संसारके कोने कोनेमें यह महावह्नि प्रज्वलित होगी और वर्तमान अनय और अत्याचार उसमें जलकर भस्मसात हो जायेंगे। संसारके समस्त विचारशील मनीषी आज इस बातको

महसूस कर रहे हैं कि वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें आमूल परि-वर्त्तन करना ही होगा—आमूल परिवर्तन किये विना असुख और वर्तमान अशांतिका नाश नहीं हो सकता।

लेकिन इस महान् कार्यको सम्पादित करनेवाले 'दीवानों' को सुख वैभवके समस्त उपादानोंको चरणोंसे ठुकरा देना होगा। कुसु-माकीर्ण मार्गको छोड़कर उस वन्धुर पथपर चलना पड़ेगा, जिस पर कंटक बिखरे पड़े है, और हिंस्र जन्तु गर्जन किया करते हैं। नाना प्रकारके प्रलोभन उनके मार्गमें उपस्थित होंगे। अनेकविध उपायोंसे पूंजीपति उन्हे लक्ष्यच्युत करनेका प्रयास करेंगे!......संसारके उन सभी हिस्सोंमें, जहां-जहां क्रांतिका सूत्रपात हुआ है, पूंजीपतियोंने क्रांतिकारी युवकोंको प्रलोभन देकर बहकानेका प्रयास किया है। दुर्बल हृदय वाले कई क्रांतिकारियोंके प्रलोभनपाशमें फंस जानेके कारण ही न जानें कितनी कितनी क्रांतियां असफल होगई। कहीं रुपयेंका प्रलोभन दिया गया, कहीं किसी सुन्दरी रूपसीने अपनी रूपमदिरासे उन्हें विमुग्ध करके लक्ष्यच्युत कर दिया!......अतएव भविष्यकी महाक्रांतिके संचालकोंको यह अच्छी तरहसे निश्चय कर लेना चाहिये कि संसारका बड़ासे बड़ा प्रलोभन भी हमारे हृदयको विचलित न कर सके। उन्हें यह प्रमाणित कर देना होगा कि विश्व का कोई भी प्रलोभन - आर्थिक वा शारीरिक—उन्हे कर्त्तव्य पथसे विचलित नहीं कर सकता। वे अपनी क्रान्ति-साधनाको अनव-रत परिश्रम कर अपने क्रांति-परिचायक यज्ञको पूर्णाहुति देकर ही विश्राम करेंगे।

वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त मृतप्राण हो चुकी है पूंजी-वादका दुर्ग अब गिरने गिरनेको है। और पूंजीवादपर आश्रित वर्तमान सभ्यता महानाशके अन्धकारमें विलुप्त होनेवाली है। संसार के समस्त तरुण—भविष्यके गौरवोज्वल स्वरूपका आह्वान करनेवाले तरुण आज विप्लवका सन्देश लिये हुये प्रलयकी ज्वालाओं विच-रण कर रहे हैं।

क्रांति की जय हो

जीवनके मिथ्या वैभव विलास को त्याग कर कंटकाकीर्ण मार्गके पथिक बननेवालों की जय होगी। अपनी यौवन सुलभ आकांक्षाओंको रौंधकर प्रलयकी ज्वालाओंमे भी मुसकुरानेवालों की जय होगी। इस लिये कि संसार की समस्त प्रमुख विचार शक्तियां आज उनके पक्षमें हैं। इसलिये कि लक्ष लक्ष नर नारियोंने अपने कलेजेके खूनसे इनका विजय संगीत लिखा है। इसलिये कि सभी मातायें और बहिने आंखोंमें आंसू भरकर इन की जय मना रही हैं।

"......बस, अब और नहीं सहा जाता !

इच्छाओंका—आकांक्षाओंका विहग अब अधिक दिनोंतक इस प्रकार तड़पाया नहीं जा सकता ! कारागारकी इन अंधेरी और मलीन कोठरियोंमें रहते-रहते अन्तरात्मा अब चीत्कार कर उठी है"जीवनमें अब इतनी-इतनी निदारुण यातनायें नहीं सही जातीं।"—विश्व मानवका अन्तर्निरोदन कुछ कुछ इसी प्रकारका है !

पृथ्वीके प्रत्येक भागसे आवाज आ रही है—अब और नहीं सहा जाता !

प्राणोंके कोमल भावोंको शाब्दिक परिधान पहनाकर विश्व-साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेवाला कवि आज अपनी वीणाको पटककर कह उठा—बस, अब और नहीं सहा जाता !

प्रातःकालकी विहग मुखरित घड़ियोंसे लेकर सन्ध्याकी अलस घड़ियों तक अनवरत श्रम करनेवाला मजदूर अपनी टोकरी फेंक कर कह उठा है—बस, अब और नहीं सहा जाता !

पूंजीपतियोंके आदेशानुसार अपनी अन्तरात्माके आदेशोंका हनन करके सम्पादकीय लिखनेवाला सम्पादक अपनी लेखनी फेंक कर कह उठा है—बस, अब और नहीं सहा जाता !

दिनरात खेतमें पिसते रहनेके उपरान्त घर लौटकर अपने

बच्चोंको भूखसे तड़पता हुआ देखकर किसान तड़प उठा है,—बस, अब और नहीं सहा जाता !

मानव-जातिकी हितैषणासे उत्प्रेरित होकर रात्रिन्दिव अपनी गवेषणाशालामें तपस्या करके भी यथायोग्य आवश्यक सामग्रियां न पा सकनेवाले वैज्ञानिककी आत्मा क्रन्दन कर उठी है,—बस, अब और नहीं सहा जाता !

संसारके शारीरिक एवं बौद्धिक श्रमजीवी आज विक्षुब्ध होकर कह उठे हैं—बस, अब और नहीं सहा जाता !

(२)

घोर असन्तोषकी ज्वाला धधक उठी है मानव-जातिके अन्तरात्ममें ! अत्याचार और अनाचारके,—शोषण और उत्पीड़नके मध्य ज्ञान विज्ञानके आलवालमें क्रांतिका पौधा विकसित हो उठा है ! संसारका ऐसा कौन सा भाग है, जहां क्रान्तिकारी तरुणोंका दल न हो, जहां विप्लवकारी गायन न गाये जाते हों, जहां अनलवाहन सन्देश न प्रचारित किये जाते हों !

कलकत्तेकी सड़कोंपर देखो,...सहस्रों सर्वहारा श्रमिक जा रहे है,..."इन्कलाब-जिन्दाबाद" के उच्चस्वरसे हरिसन रोडको गुञ्जित करते हुए। उनके दिलोंमें जोश हैं,...प्राणोंमें तूफान है,...हृदयमें विप्लवकी आंधी है !

बम्बईकी सड़कों पर देखिये,...न्यूयार्क, पेरिस, लन्दनमें देखिये कहां नहीं है विप्लवी दल ?

लेकिन विप्लव संघटित रूपमें करना होगा। विछिन्न रूपसे किये गये आन्दोलनोंसे विशेष लाभकी सम्भावना नहीं।

(३)

सभी देश आज किसी न किसी रूपमें साम्राज्यवादका विरोध करनेको बद्धपरिकर हो उठे हैं !

अबीसिनिया लूटा गया—वहांके अबोध शिशुओंपर निर्दयी इटालियन राक्षसोंने बमबर्षा की—लाखों घर श्मशानके रूपमें परिणित कर दिये गये—विधवाओंके करुण क्रन्दनसे पृथ्वी-आकाशमें हलचल मच गयी—माताओंके करुणामय विलापसे पत्थर सा दिल भी पसीज गया; परन्तु ईसा मसीहके उपासक कहलानेवाले इटालियन अपनी राक्षसी प्रवृत्तिसे बाज न आये।

यह कुछ नहीं समाजवादकी साधनाके लिये होनेवाला एक तुच्छ बलिदान था—पापोंके घड़ेमें एक बूंद रक्तका संचय था।

अत्याचारोंका अन्त अवश्यम्भावी है, क्रांति अनिवार्य है—ऐसे समयमें जब कि साम्राज्यवाद समाजवादके वक्षःस्थलपर अन्याय और अविचारिताका ताण्डव करने जा रहा है।

जर्मनीके द्वारा जब जेकोस्लोवेकिया लूटा गया,—उसके गलेपर मुसकरा-मुसकराकर छुरी चलाई गई, उस समय संसारके विभिन्न देशोंसे कौन सा रुख ग्रहण किया था यह विषय विचारणीय है।

सुदूरवर्ती अस्ट्रेलियासे इस आशयके पत्र आये थे कि जर्मनी यदि जेकोस्लोवेकियापर आक्रमण करेगा तो वे जेकोस्लोवेकियाको सहाय्य प्रदान करेंगे। ग्रेट ब्रिटेनमें हफ्तों तक ऐसी सभायें की गईं थी जिनमें जेकोस्लोवेकियाकी रक्षाके लिये लोगोंने घोषणाएं कीं! सभाओंमें लोग लाखोंकी संख्यामें एकत्रित होते थे। ब्रिटेनके अत्यन्त प्रभावशाली पत्रोंने न जानें कितनी चिठ्ठियां प्रकाशित

कीं जिनमें लोगोंने जेकोस्लोवेकियाकी रक्षाके लिये अपने हृदयोद्गार प्रकट किये थे। अमेरिका युनाइटेड स्टेट्समें भी जेकोस्लोवेकियाके पक्षमें वृहदान्दोलन खड़ा हुआ था। जेकोस्लोवेकियाकी रक्षा करो नामक अनेकानेक सभायें यू० एस० पी० में हुईं जिनमें लोगोंने फैसिस्ट जर्मनीके प्रति रोष प्रकट किया इसके अतिरिक्त युगोस्लोवेया, बलगेरिया, पोलैण्ड आदि देश जहां फैसिस्ट राज्योंकी अवस्थिति है वहां भी लोगोंने जेकोस्लोवेकियाके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। लाखों आदमियोंने जेकोस्लोवेकियाकी रक्षाके लिये स्वयं सेवक बननेका निश्चय किया। यूरोपकी विभिन्न राजधानियोंमें रहने वाले जेकोस्लोवेकियाके राजदूतोंको अगणित पत्र मिले थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि संसारमें सर्वत्र साम्राज्यवादके प्रति घृणा की भावनाएं प्रस्रुत होती जा रही हैं।

जार्ज डिमिट्रोफने ठीक ही कहा है कि—इस समय जिस बातपर हमें सर्वाधिक ध्यान देना चाहिये वह यह है कि सर्वप्रथम हमें पूंजीवाद और साम्राज्यवादके समर्थकोंको शक्तिहीन करना पड़ेगा। तभी हम मानव जातिके सुख और शान्तिका संग्राम जारी रख सकेंगे। हमें इस बातके लिये आप्राण चेष्टा करनी चाहिये कि सामाजवादी और पूंजीपति पृथ्वीपर और अधिक अत्याचार न करने पायें। हमें उनके बहकावेमें भी नहीं आना चाहिये। क्योंकि वे हरदम इस बातकी चेष्टा करते रहते हैं कि इस पृथ्वीपर वे ही केवल सुखोपभोग करें....वे ही आनन्दोल्लसित होकर विचरण करें और शारिरिक श्रमजीवी एवं मानसिक श्रमजीवी सदैव विपद ग्रस्त रहें।

वर्तमान परिस्थितियां अत्यन्त पेचीदा हो गई हैं। हमारे सामने एक कार्यक्रम होना चाहिये। श्रमिकवर्गके एक युनाइटेड फ्रौंटकी इस समय महती आवश्यकता है जो फैसिस्टोंमें औद्धत्य एवं साम्राज्यवादियोंमें साम्राज्यलिप्सा और परवित्तापहरणकी वृत्ति को विनष्ट कर दे। संसारके श्रमिकवर्ग यदि अपने बन्धनोंको विछिन्न करना चाहते हैं तो उन्हें अपनी शक्तिको पहचानकर ऐक्य सूत्रमें आबद्ध होना चाहिये। और सम्मिलित रूपसे फसिज्मकी अग्रगतिका दमन करना चाहिये। फासिज्म मानवताका सबसे प्रबल शत्रु है। अपनी वर्तमान उद्भव गतिविधियोंसे ये साम्राज्यवादी सारे संसारको अपना विरोधी बना रहे हैं। परस्वापहरणकी प्रवृतिसे ये संसारके अन्य सभी राष्ट्रोंकी दृष्टिमें नीचे गिरते जा रहे हैं. अपनी तथाकथित सफलताओंसे वे अपने ही चरणोंके नीचेकी जमीन खोद रहे हैं। वह समय दूर नहीं जब उनके समस्त अत्याचार उन्हींके गला घोंटने लगेंगे। इन्टरनैशनल कम्यूनिस्टके जनरल सेक्रेटरी जोर्ज डिमिट्रोफने ठीक ही लिखा है कि फैसिस्टोंकी विजय एक ऐसी विजय है जो उन्हींके लिये घातक होगी। जर्मनीने अस्ट्रियापर अपने अधिकारकी स्थापना कर ली है मगर अस्ट्रियाके सातलाख आदमी उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। उनलोगोंने जेकोस्लेवेकियाको शक्तिहीन कर दिया है। लेकिन साथ ही साथ संसारके सभी देशोंको अपने विरुद्ध कर लिया है। वे लोग स्पेनके निवासियोंके रुधिरसे वहांकी भूमिको आप्लावित कर रहे हैं। लेकिन बीस लाख स्पेनिस फैसिस्टोंका नाम लेते हुए घृणाकी भावनासे अभिभूत हो उठते हैं।

फासिस्टोंने विश्वके वायुमंडलको गंदा कर दिया है; वे न्याय और विधानके नामपर अन्याय और अत्याचार करनेको तुले हुए हैं; उन्हें अपनी साम्राज्यलिप्साओंके समक्ष सभी कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। ठीक ही है अत्याचारकी आंखें नहीं होतीं। जहां अविचार है वहीं अत्याचार है और उसका अन्तिम परिणाम है सर्वदाके लिये उसका अन्त। किसी भी विषयकी पराकाष्ठा बुरी है—आज फासिस्टवादकी हद हो चुकी है, इसलिये उसका अन्त भी अवश्यम्भावी है।

(४)

इन समस्त लक्षणोंको देखते हुये हमारे मुखसे यही निकलता है कि क्रान्तिकी जय होगी—समाजवादकी जय होगी!

जीवनके मिथ्या वैभव विलासको त्यागकर कंटकाकीर्ण मार्गके पथिक बननेवालोंकी जय होगी। अपनी यौवन सुलभ आकांक्षाओंको रौंधकर प्रलयकी ज्वालाओंमें विचरण करके भी मुसकुरानेवालोंकी जय होगी।

इसलिये कि संसारकी समस्त प्रमुख विचार शक्तियां आज इनके पक्षमें हैं! इसलिये कि लक्ष-लक्ष नरनारियोंने अपने कलेजेके खूनसे इनका विजय संगीत लिखा है! इसलिये कि सभी मातायें और बहनें आंखोंमें आंसू भरकर इनकी जय मना रही हैं। इसलिये कि सृष्टिकी संचालिका शक्ति इन विप्लवी तरुणोंके साथ है!

\+ \+ \+ \+

जीवन अब और अधिक दिनोंतक तमाशा नहीं बना रह सकता। कोटि कोटि मानवोंको बुभुक्षित रखकर कतिपय अल्प-संख्यक व्यक्ति अब अधिक दिनों तक मजे नहीं उड़ा सकते। संसारके करोड़ों मनुष्योंको वस्त्रहीन एवं गृहहीन रखकर कतिपय इने गिने व्यक्ति अब अधिक दिनोंतक महलोंमें निवास नहीं कर सकते। पृथ्वी स्वर्गके समकक्ष नहीं बनेगी तो कमसे कम वैज्ञानिक प्रगति उसे जितना सुन्दर रूप दे सकती है उतनी सुन्दर तो अवश्य ही हो जायगी।

ज्ञान और विज्ञान दोनों साथ साथ चलेंगे और मानवी सभ्यता के पथको प्रशस्त करते चलेंगे। दुर्भाग्य तिमिरको दूरीकृत करके आलोक विस्तृत करते चलेंगे।

मानव-जाति विभिन्न उपजातियों, देशों एवं राष्ट्रोंमें प्रविभक्त नहीं रह सकती। नाना सम्प्रदाय और नाना धर्म अब ज्यादा दिनों तक पृथ्वीके वातावरणको कलुषित नहीं. बनाये रख सकते। मिथ्या अन्धविश्वास और रुढ़ीवादकी शृङ्खला भग्न हो जायगी।

शैशव भी सुन्दर होगा; कैशोर्य भी सुन्दर होगा। यौवन भी सुन्दर होगा, और वार्द्धक्य भी। रोटीका सवाल हल करनेकी चिन्तामें—जिसके अस्तित्वका प्रमुख कारण वर्तमान कुत्सित सामाजिक व्यवस्था है अधिक दिनों तक नहीं रह सकेगी। हृष्ट पुष्ट और प्रसन्नचित्त मानव सर्वत्र दृष्टिगोचर होंगे। मुसुकुराते हुये किशोर अपनी चंचल उमंगोंको लिये हुये जीवन पथपर चलते हुये दिखलाई देंगे। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके साथ ही साथ

अनेकानेक प्रकारकी चिन्तायें—अनेकानेक प्रकारके दुःख क्लेश विदूरित हो जायेंगे। सूर्यका उदय भी सुन्दर होगा,—अस्त भी। राकाकी रजनी भी!—चाँदकी मुसकिराहट भी और तारकोंका स्मित भी।